

दलशा छात्र संगठन

Disha Students Organization

डसूदा घुषणाडतुर, करुडकुरड और संवलधुआन

Draft Manifesto, Program and Constitution

दिशा छात्र संगठन

Disha Students Organization

मसौदा घोषणापत्र, कार्यक्रम और संविधान
Draft Manifesto, Program and Constitution

दिशा छात्र संगठन

मसौदा घोषणापत्र और कार्यक्रम

प्राक्कथन

छात्र दोस्तो! युवा साथियो!

हम भारतीय इतिहास के एक अभूतपूर्व रूप से अन्धकारमय दौर से गुजर रहे हैं। हिटलर और मुसोलिनी की विचारधारा में यक्रीन करने वाली फ़ासीवादी ताक़तें सत्ता में हैं। हर प्रकार के प्रतिरोध के स्वर को कुचला जा रहा है। क्रान्तिकारी संघर्षों के ज़रिये खून देकर हासिल किये गये तमाम जनवादी और नागरिक अधिकार छीने जा रहे हैं। आम मेहनतकश आबादी देशी-विदेशी इजारेदार पूँजी की लूट तले पिस रही है। बेरोज़गारी की स्थिति आज़ाद भारत में ऐसी कभी नहीं रही। महँगाई ने आम मेहनतकश जनता और मध्य वर्ग तक की कमर तोड़ डाली है। लूट-शोषण, बेरोज़गारी, महँगाई तले कराह रही आम जनता को सत्ताधारी साम्प्रदायिक फ़ासीवादी ताक़तें धर्म और जाति पर लड़वा रही हैं, ताकि वे अपनी असली दुश्मन को न पहचान पायें। अपने जर्मन व इतालवी फ़ासीवादी पितामहों से सीखते हुए भारत के साम्प्रदायिक फ़ासीवादी भी बदहाल और परेशान मेहनतकश जनता के सामने एक नक़ली दुश्मन पेश कर रही हैं। कहीं ये नक़ली दुश्मन मुसलमान हैं, कहीं दलित, कहीं स्त्रियाँ, तो कहीं प्रवासी मेहनतकश लोग। इस नक़ली दुश्मन का निर्माण कर असली दुश्मन, यानी मुनाफ़ा-केन्द्रित पूँजीवादी व्यवस्था और उसके सबसे प्रतिक्रियावादी राजनीतिक सत्ता-रूप, यानी फ़ासीवाद, को छिपाया जा रहा है।

एक ऐसे समय में हमें भारत के छात्रों-युवाओं के दिलों में बसे युगान्तरकारी क्रान्तिकारी प्रतीक शहीदे-आज़म भगतसिंह के ये शब्द शिद्दत से याद आते हैं:

“जब गतिरोध की स्थिति लोगों को अपने शिकंजे में जकड़ लेती है तो किसी भी प्रकार की तब्दीली से हिचकिचाते हैं। इस जड़ता और निष्क्रियता को तोड़ने के लिए एक क्रान्तिकारी स्पिरिट पैदा करने की ज़रूरत होती है, अन्यथा पतन और बर्बादी का वातावरण छा जाता है। लोगों को गुमराह करने वाली प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ जनता को ग़लत रास्ते पर ले जाने में सफल हो जाती हैं। इससे इन्सान की प्रगति रुक जाती है और उसमें गतिरोध आ जाता है। इस परिस्थिति को बदलने के लिए यह ज़रूरी है कि क्रान्ति की स्पिरिट ताज़ा की जाये, ताकि इन्सानियत की रूह में हरक़त पैदा हो।”

दोस्तो! शहीदे-आज़म के ये शब्द इतने प्रासंगिक शायद भारतीय इतिहास में कभी नहीं थे। आज यह ज़रूरत हमेशा से ज़्यादा है कि हम लोगों में क्रान्तिकारी स्पिरिट को पैदा करें, जड़ता और निष्क्रियता को तोड़ें। वरना किस तरह से पतन और बर्बादी का वातावरण छा सकता है, इसकी कुछ झलकें हमें अपने समाज में दिखलाई पड़ रही हैं। दंगों, मॉब-लिंग से लेकर सत्ता से प्रश्न पूछने वाले बुद्धिजीवियों, पत्रकारों, शिक्षकों की हत्याएँ क्या दिखला रही हैं? स्त्रियों के विरुद्ध बर्बर क्रिस्म के अपराध इस कदर कभी नहीं बढ़े थे, जिस कदर फ़्रासीवादी बर्बरों के सत्ता में आने के बाद बढ़े हैं। इसका कारण भी समझा जा सकता है। जब सत्ताधारी पार्टी में ही बलात्कारी व दुराचारी भरे हों, तो हम और क्या उम्मीद कर सकते हैं? जब समाज में हताशा का माहौल हो तो तरह-तरह की मानवद्रोही प्रवृत्तियों का सिर उठाना लाजिमी है। दलित-विरोधी जघन्य अपराधों की संख्या भी मोदी सरकार के सत्ता में आने के बाद बढ़ती गयी है। इसमें भी कोई ताज़ुब की बात नहीं है क्योंकि संघ परिवार के फ़्रासीवाद का एक अहम पहलू जातिवाद और ब्राह्मणवाद है। तमाम दमित राष्ट्रों के बर्बर सैन्य दमन में भी फ़्रासीवादियों के सत्ता में आने के बाद तेज़ी से बढ़ोत्तरी हुई है। वजह यह है कि अन्धराष्ट्रवाद और विस्तारवाद भी फ़्रासीवाद का एक अहम तत्व हैं।

जिस भी व्यक्ति ने अपनी आँखों पर साम्प्रदायिकता और फ़िरकापरस्ती की पट्टी नहीं बाँध रखी है, वह साफ़ तौर पर देख सकता है कि मौजूदा फ़्रासीवादी मोदी सरकार मज़दूर-विरोधी, युवा-विरोधी, छात्र-विरोधी, साम्प्रदायिक, अल्पसंख्यक-विरोधी, स्त्री-विरोधी, दलित-विरोधी, आदिवासी-विरोधी, कर्मचारी-विरोधी और दमित राष्ट्रों का नंगे तौर पर दमन करने वाली सरकार है। यह देशी और विदेशी बड़ी इजारेदार पूँजी की चाकर सरकार है जो पूरे देश को इनकी लूट की चरागाह बनाने का काम बेशर्मी के साथ कर रही है। संघ परिवार के “रामराज्य” और “हिन्दू राष्ट्र” का मतलब आम मेहनतकश आबादी और आम छात्रों-युवाओं के लिए मुंह पर ताला लगाकर

और पेट पर पट्टी बाँधकर अम्बानी, अडानी, टाटा, बिड़ला और समूचे बड़े इजारेदार पूँजीपति वर्ग के कारखानों और दफ्तरों में खटना है। यह “हिन्दुओं का शासन” नहीं है, बल्कि यह बड़े इजारेदार पूँजीपति वर्ग की नग्न और बर्बर तानाशाही का नाम है, जिसके शिकार आम मेहनतकश हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, आम मेहनतकश दलित, आदिवासी, स्त्रियाँ और छात्र-युवा सभी हो रहे हैं। पिछले साढ़े छह वर्ष के मोदी सरकार के शासन पर एक निगाह डालते ही यह बात किसी को भी स्पष्ट हो जाती है।

ऐसे अन्धकारमय और निराशाजनक माहौल में, हम छात्रों-युवाओं को अपनी सामाजिक भूमिका को पहचानने की ज़रूरत है। हम छात्र-युवा इसी समाज का अंग होते हैं। बल्कि कहना चाहिए कि आम तौर पर समाज में प्रगतिशील परिवर्तन बिना छात्रों-युवाओं के उद्वेलन के नहीं हुए हैं। पूरे आधुनिक विश्व के इतिहास की सभी महान क्रान्तियों के लिए यह बात सौ फ़ीसद सच है। आज के दौर में भी यह बात पूर्णतः सच है। आइये, संक्षेप में एक निगाह अपने देश के सामाजिक-आर्थिक हालात पर डाल लेते हैं।

देश के मौजूदा हालात: पूँजीपति वर्ग की निरंकुश साम्प्रदायिक फ़ासीवादी तानाशाही और आम जनता

देश के मेहनतकश वर्गों के सामाजिक-आर्थिक हालात आज आज़ादी के बाद से सबसे बुरी स्थिति में हैं। देश में आज़ादी के बाद बेरोज़गारी की स्थिति भयंकरतम है। जनता के बीच उपभोग खर्च का स्तर पिछले आठ वर्षों में 27 प्रतिशत नीचे चला गया है। यानी, आज जनता पहले से कम भोजन, कपड़ा, ईंधन आदि का उपभोग कर पा रही है। गरीबी और कुपोषण की हालत किसी से छिपी हुई नहीं है। सरकारी आँकड़े पहले भी भरोसेमन्द नहीं थे लेकिन मोदी सरकार के आने के बाद वे चुटकुले बन चुके हैं। इसलिए उन आँकड़ों को छोड़ दिया जाये, तो सच्चाई यह है कि देश की क़रीब आधी आबादी गरीबी रेखा के नीचे या उसके क़रीब जी रही है। विश्व बैंक के अनुसार, देश की दो-तिहाई आबादी 2 डॉलर प्रतिदिन की औसत आय पर जिन्दा है, यानी क़रीब रु. 150 प्रतिदिन। क्या इस आमदनी में कोई मेहनतकश परिवार रोज़ दो वक्रत पोषणयुक्त भोजन भी खा सकता है? क्या वह अपने बच्चों को शिक्षा व चिकित्सा मुहैया करा सकता है? यदि बेरोज़गारों की संख्या को घपलेबाज़ी करके नहीं बल्कि सही तरीक़े से जोड़ा जाये तो वह 27 से 30 करोड़ के बीच है। *नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे* के अनुसार

देश के करीब 50 प्रतिशत बच्चे कुपोषण का शिकार हैं जबकि 56 प्रतिशत महिलाएँ खून की कमी व कमजोरी का शिकार हैं।

देश में भुखमरी, कुपोषण, बाल मृत्यु दर, अपंगता, लैंगिक शोषण और बाल श्रम (यूनीसेफ के अनुसार भारत में 11 करोड़ बाल श्रमिक हैं) के भयंकर हालात बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य, बौद्धिक व शारीरिक क्षमताओं को बुरी तरह से प्रभावित करते हैं, जिसके कारण बाद में शिक्षा में भी उनकी स्थिति बेहद चुनौतीपूर्ण होती है।

शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षा के अधिकार कानून के आने के बाद 6 वर्ष से 14 वर्ष के बच्चों के लिए शिक्षा मूलभूत अधिकार बन गयी है, लेकिन यह औपचारिक व कानूनी सच्चाई असली सच्चाई को छिपा जाती है। पहली बात तो यह है कि जिन सरकारी स्कूलों में सर्वशिक्षा अभियान के तहत बच्चों को शिक्षा दी जा रही है, उनमें बुनियादी सुविधाओं, जैसे कि शिक्षकों, शौचालयों, पीने के पानी आदि तक की समुचित व्यवस्था नहीं है। स्कूल जाने वाले कुल बच्चों में से करीब 18 प्रतिशत स्कूली शिक्षा पूरी नहीं कर पाते और गरीबी की वजह से शिक्षा छोड़ने के लिए मजबूर हो जाते हैं। दलितों, मुसलमानों, आदिवासियों और स्त्रियों में यह प्रतिशत और भी ज्यादा है। प्राथमिक शिक्षा से ऊपर जाते ही ड्रॉप आउट दर बढ़ने लगती है क्योंकि माध्यमिक व उच्च स्कूली शिक्षा में प्राइवेट स्कूलों का दखल पिछले 30 वर्षों में अभूतपूर्व रूप से बढ़ा है। देश में इस समय स्कूलों में होने वाले कुल दाखिलों का 40 प्रतिशत निजी स्कूलों में हो रहा है हालांकि कुल स्कूलों में निजी स्कूलों का हिस्सा 25 प्रतिशत है। स्कूली शिक्षा जिस रफ्तार से बाजार के हवाले की जा रही है, उसी रफ्तार से स्कूल से ड्रॉप आउट होने वाले छात्रों की संख्या भी बढ़ रही है।

अगर उच्चतर शिक्षा की बात करें तो 2019 में मोदी सरकार द्वारा किये गये अखिल भारतीय उच्चतर शिक्षा सर्वेक्षण (AISHE) के अनुसार कुल दाखिला दर कहने को 26 प्रतिशत के करीब है, लेकिन वास्तव में भाजपा सरकार ने इस आँकड़े को सर्टिफिकेट व डिप्लोमा कोर्स आदि को जोड़कर बढ़ा दिया है, जो कि एक चार सौ बीसी ही है। नतीजतन, अब वास्तविक आँकड़े का अनुमान ही लगाया जा सकता है! 2012 में यह उच्चतर शिक्षा में दाखिला दर 12 प्रतिशत थी। अभी भी यह 12 से 13 प्रतिशत के ही बीच मानी जा सकती है। यानी बारहवीं उत्तीर्ण करने वाले कुल युवाओं में से केवल 12 प्रतिशत को ही वास्तविक उच्चतर शिक्षा तक जाने का अवसर प्राप्त होता है। ये दाखिले भी ज्यादातर शहरी खाते-पीते मध्यवर्ग से होते हैं। यानी एक बड़ी युवा आबादी उच्चतर शिक्षा तक पहुँच ही नहीं पाती है। 85 प्रतिशत से भी ज्यादा नौजवान कभी उच्च शिक्षा के परिसरों के दरवाजे तक नहीं देख पाते। उनका हिस्सा उच्चतर शिक्षा के दाखिलों में और भी घटता जा रहा है। कारण यह है कि पहले

कांग्रेस की सरकारों ने और अब अभूतपूर्व रूप से भाजपा सरकार ने उच्चतर शिक्षा पर खर्च को लगातार घटाया है। नतीजतन, अधिकांश विश्वविद्यालयों, कॉलेजों और तकनीकी शिक्षण संस्थानों को अपने संसाधन खुद जुटाने को कह दिया गया है। ज़ाहिर है, ये विश्वविद्यालय और कॉलेज अब पूरी तरह से बाज़ार के सिद्धान्त पर काम कर रहे हैं और छात्रों से मोटी फ़ीसें वसूल कर रहे हैं। उच्चतर शिक्षा क्षेत्र को देशी-विदेशी पूँजी के लिए खोल देने के लिए मोदी सरकार ने पिछले छह साल में कई क़दम उठाये हैं। कांग्रेस सरकार ने जिस रफ़्तार से देश की उच्चतर शिक्षा को निजी पूँजीपतियों के हवाले करने का काम किया था मोदी सरकार ने उससे कहीं ज़्यादा तेज़ रफ़्तार से इस काम को अंजाम दिया है। क्या ये 88 प्रतिशत नौजवान नाक्राबिल हैं? क्या उन्हें उच्चतर शिक्षा पाने का हक़ नहीं है?

सच्चाई यह है कि शिक्षा को एक बाज़ारू माल बना दिया गया है। जिनके पास पैसा है वे बेहतर स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों व तकनीकी शिक्षण संस्थानों तक पहुँच रखते हैं। जिनके पास पैसा नहीं है वे अशिक्षित रहकर या स्कूल से ड्रॉप आउट होकर अकुशल या अर्द्धकुशल मज़दूरों के जमात में शामिल होने, या ज़्यादा से ज़्यादा आई.टी.आई. या पॉलीटेक्निक से शिक्षित होकर कुशल मज़दूरों की जमात में शामिल होने के लिए बाध्य हैं, हालांकि यह भी अब मुश्किल होता जा रहा है। और अगर उन्हें रोज़गार मिल भी गया तो नब्बे फ़ीसदी गुंजाइश इस बात की होगी कि वे भी दिहाड़ी, ठेका, कैजुअल के रूप में किसी पूँजीपति के यहाँ 12-12 घण्टे हाड़ तोड़ने के लिए मजबूर होंगे। यह कोई इत्तेफ़ाक़ नहीं है कि भारत के 55 से 60 करोड़ शहरी और ग्रामीण मज़दूरों में से 94 प्रतिशत ठेका, दिहाड़ी और कैजुअल मज़दूर हैं जिनके काम के घण्टे 90 प्रतिशत से ज़्यादा मामलों में 10 घण्टे से ज़्यादा हैं। अभी तो बेरोज़गारी की जो हालत है उसमें उच्चतर शिक्षा की स्नातक और स्नातकोत्तर की डिग्रियाँ लिये नौजवान तक लेबर चौकों पर खड़े हैं, असेम्बली लाइनों पर खड़े हैं या हमाली और बेलदारी तक कर रहे हैं।

फ़्रासीवादी मोदी सरकार की पूँजीपरस्त नीतियाँ लगातार इन हालात को बद से बदतर बना रही हैं। जनता में पनप रहे असन्तोष और गुस्से को फ़्रासीवादी शक्तियाँ लगातार ग़लत दिशा देने का प्रयास कर रही हैं और उन्हें धर्म, जाति, भाषा और क्षेत्र के नाम पर लड़ाने की कोशिशें कर रही हैं। देश में विशेष तौर पर पिछले 30-35 वर्षों में संघ परिवार और भाजपा ने दर्जनों छोटे-बड़े दंगे भड़काए हैं। इनमें से बाबरी मस्जिद के ध्वंस और उसके बाद के दंगे और गुजरात में 2002 में हुए राज्य-प्रायोजित दंगा और नरसंहार प्रमुख थे। लेकिन इनके अलावा भी इससे छोटे पैमाने के कई स्थानीय दंगों को संघ परिवार ने अंजाम दिया है। चाहे वह भागलपुर में हुआ हो या मुज़फ़्फ़रनगर

में या फिर हाल में दिल्ली में। संकट के दौर में असुरक्षा और अनिश्चितता झेल रहा टटपुजिया वर्ग और उद्देश्यहीनता और अमानवीकरण का शिकार लम्पट सर्वहारा वर्ग खास तौर पर साम्प्रदायिक उन्माद में बह जाते हैं क्योंकि उनके पास अपने सही दुश्मनों की पहचान करने का कोई विश्लेषण मौजूद नहीं होता। ऐसे में उन्हें प्रतिक्रियावादी फ्रासीवादी शक्तियाँ एक काल्पनिक शत्रु दिखलाने में और एक करिश्माई तानाशाह द्वारा सभी समस्याओं के समाधान के सपने में यक्रीन दिलाने में कामयाब होती हैं। मोदी सरकार के शासन में जैसे-जैसे आर्थिक संकट, गरीबी, बेरोज़गारी, महँगाई बेकाबू होती जा रही है वैसे-वैसे संघ परिवार की दंगाई मशीनरी भी ओवरटाइम काम करना शुरू कर चुकी है। गोदी मीडिया द्वारा अफ़वाहों, झूठों और अन्धविश्वास की बारिश कर टटपुजिया और आम मेहनतकश आबादी को गैर-मुद्दों पर उलझाया जा रहा है, धर्म, जाति और क्षेत्र पर लड़ाया जा रहा है। लेकिन ऐसा अनिश्चितकाल तक नहीं चल सकता है। आज आम छात्र-युवा जागृत भी हो रहे हैं और शिक्षा और रोज़गार के हक़ के लिए आवाज़ उठा रहे हैं। ऐसे समय में छात्र आन्दोलन में भी एक सही कार्यदिशा और नेतृत्व की सख़्त ज़रूरत है। इसके बिना हम स्वतःस्फूर्त आन्दोलन के भरोसे मौजूदा फ़्रासीवादी शासन से निजात पाने की उम्मीद नहीं पाल सकते हैं।

यह भारतीय इतिहास का सबसे अन्धकारमय दौर है। लेकिन ऐसा नहीं है कि मोदी सरकार के सत्ता में आने से पहले देश में आम मेहनतकश जनता के लिए कोई स्वर्ग था। हम छात्रों-युवाओं को यह भी जान लेना चाहिए कि आज़ादी के बाद हमारे देश में जो सत्ता आयी उसने विकास का क्या रास्ता अख़्तियार किया, उसका चरित्र क्या था और उसके शासन के क्या नतीजे देश की जनता को देखने पड़े।

सत्तर साल की आज़ादी या आम मेहनतकश जनता की बर्बादी

“कांग्रेस का उद्देश्य क्या है? मैंने कहा है कि वर्तमान आन्दोलन किसी न किसी समझौते या पूर्ण असफलता में समाप्त होगा।

“मैंने यह इसलिए कहा है क्योंकि मेरी राय में इस समय वास्तविक क्रान्तिकारी ताकतें मैदान में नहीं हैं। यह संघर्ष मध्यवर्गीय दुकानदारों और चन्द पूँजीपतियों के बलबूते किया जा रहा है। ये दोनों वर्ग, विशेषतः पूँजीपति, अपनी सम्पत्ति या मिल्कियत को ख़तरे में डालने की ज़ुरत नहीं कर सकते। वास्तविक क्रान्तिकारी

सेनाएँ तो गांवों और कारखानों में हैं--किसान और मजदूर। लेकिन हमारे 'बुर्जुआ' नेताओं में उन्हें साथ लेने की हिम्मत नहीं है, न ही वे ऐसी हिम्मत कर सकते हैं। ये सोये हुए सिंह यदि एक बार गहरी नींद से जग गये तो वे हमारे नेताओं की लक्ष्य-पूर्ति के बाद ही रुकने वाले नहीं हैं।”

“भारत सरकार का प्रमुख लार्ड रीडिंग की जगह यदि सर पुरुषोत्तम दास ठाकुर दास हो तो उन्हें (जनता को) इससे क्या फर्क पड़ता है? एक किसान को इससे क्या फर्क पड़ेगा, यदि लार्ड इरविन की जगह सर तेज बहादुर सप्रू आ जायें?”

- शहीदे-आज़म भगतसिंह (‘क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा’)

1947 में कांग्रेस के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन के परिणामस्वरूप एक समझौते के रूप में राजनीतिक आज़ादी हासिल हुई। जैसा कि शहीदे-आज़म भगतसिंह ने कहा था कि कांग्रेस देश के पूँजीपति वर्ग की पार्टी है और अगर इसके नेतृत्व में राजनीतिक आज़ादी हासिल भी हुई तो फ़र्क सिर्फ़ इतना आयेगा कि गोरे अंग्रेज़ चले जायेंगे और उनकी जगह भूरे अंग्रेज़ तख़्त पर बैठ जायेंगे, लॉर्ड इरविन और लॉर्ड रीडिंग चले जायेंगे और उनकी जगह सेठ पुरुषोत्तम दास ठाकुर दास और तेज बहादुर सप्रू गद्दी पर विराजमान हो जायेंगे। भगतसिंह की यह भविष्यवाणी तो आज़ादी के चन्द दशकों के भीतर ही सही सिद्ध हो गयी थी। आज़ादी मिलने के एक वर्ष से भी पहले 1948 में ही जीप घोटाले के साथ आज़ाद भारत में घपलों-घोटालों की महागाथा शुरू हो जाती है, जिसके बाद 1950 के दशक में मुंघ्रा घोटाला, साईकिल घोटाला, 1960 के दशक में तेजा लोन घोटाला, कलिंग ट्यूब घोटाला, 1970 के दशक में नागरवाला घोटाला, मारूति घोटाला जैसे घपले हुए। यानी भारत का पूँजीपति वर्ग हमेशा की तरह केवल क़ानूनी लूट से सन्तुष्ट नहीं था और हेराफेरी और चार-सौ-बीसी करके ग़ैर-क़ानूनी लूट में भी मशगूल था। आज़ादी के तीन दशक पूरे होते-होते बेलछी, बेलाडीला और पंतनगर जैसे हत्याकाण्ड हो गये थे और चौथा दशक पूरा होते-होते हाशिमपुरा काण्ड हो गया था। इसके पहले और बाद भी राज्य-प्रायोजित आतंकवाद और हिंसा लगातार जारी रही थी। नक्सलबाड़ी विद्रोह के दौरान हज़ारों नौजवानों को सिर्फ़ पश्चिम बंगाल में मार दिया गया था। राजकीय दमन के मामले में भी भारतीय पूँजीवादी शासक वर्ग अपने औपनिवेशिक पूर्वजों से किसी रूप में पीछे नहीं था।

आज़ादी के पहले ही भारत के पूँजीपति वर्ग ने आज़ादी के बाद भारत के भावी पूँजीवादी विकास का रास्ता निर्धारित कर लिया था। 1944 के ‘बम्बई प्लान’, जिसे

‘टाटा-बिड़ला प्लान’ के नाम से भी जाना जाता है, में ही इस बात का साफ़ तौर पर ज़िक्र किया गया था कि आज़ादी के बाद पूँजीवादी विकास के लिए यह ज़रूरी है कि पब्लिक सेक्टर का एक पूरा ढाँचा खड़ा किया जाये और कुंजीभूत या आधारभूत उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र में रखा जाये। वजह यह थी कि भारत का पूँजीपति वर्ग न तो इन अवसंरचनागत क्षेत्रों में निवेश करना चाहता था (क्योंकि इससे लाभ की वापसी बहुत लम्बे समय बाद होती है) और न ही करने की औकात रखता था। इस योजना के अनुसार, जब भारत का पूँजीपति वर्ग अपने पैरों पर खड़ा हो जाये तो इन सार्वजनिक उपक्रमों को पूँजीपतियों के हाथों में सौंप दिया जाये। इसकी वजह यह थी कि भारत का पूँजीपति वर्ग पूँजीवादी विकास के लिए ज़रूरी पूरे अवसंरचनात्मक ढाँचे को अपने बूते पर नहीं बना सकता था। इसलिए उस समय ‘समाजवाद’ का नारा उछाला गया। इस नारे के तहत आज़ादी के बाद के करीब ढाई दशकों में जनता की कमाई का बैंकों के राष्ट्रीकरण व डाक व पोस्टल विभाग के राष्ट्रीकरण के ज़रिये संचय किया गया। इसके साथ ही बीमा, रेलवे, खानों-खदानों का राष्ट्रीकरण किया गया। इसके बूते पर देश की जनता की छोटी-बड़ी बचतों को एकत्र किया गया। इससे एक ओर अवसंरचनात्मक ढाँचे का निर्माण किया गया और उसमें भी ठेकों व कमीशनों के ज़रिये पूँजीपति वर्ग को लूट का पूरा मौका दिया गया, वहीं दूसरी ओर टाटा-बिड़ला जैसे तमाम बड़े पूँजीपतियों को भारी ऋण दिये गये। इन ऋणों को ही संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन सरकार के पहले कार्यकाल में वित्त मंत्री पी. चिदम्बरम ने माफ़ कर दिया! यह एक ऐसे देश में हो रहा था जहाँ आए दिन ग़रीब किसान व अर्द्धसर्वहारा सूदखोरों से लिए गये ऋणों तले दब कर आत्महत्याएँ करते हैं, शैक्षणिक ऋण को न चुका पाने के कारण आम छात्र-युवा आत्महत्या करते हैं। लेकिन उनके कर्ज़ कभी माफ़ नहीं होते, कर्ज़ माफ़ होते हैं कारपोरेट घरानों के!

बहरहाल, जनता की गाढ़ी कमाई से दिये गये इन कर्ज़ों के बूते भारत का पूँजीपति वर्ग अपने पैरों पर खड़ा हुआ। अब जबकि पूँजीपति वर्ग देश की मेहनतकश जनता की बचतों को लूट कर अपने पैरों पर खड़ा हो चुका था, तो 1980 के दशक के मध्य से ही निजीकरण और उदारीकरण की चर्चा शुरू हो गयी और इन्दिरा गाँधी के प्रधानमंत्रित्व काल और फिर राजीव गाँधी के प्रधानमंत्रित्व काल में इस पर थोड़ा-बहुत अमल भी शुरू हो गया। लेकिन पूरे गाजे-बाजे और ज़ोर-शोर से इसकी शुरुआत नरसिंह राव के प्रधानमंत्रित्व काल में हुई, जब हमारे भद्र बुद्धिजीवी मनमोहन सिंह वित्त मंत्री थे, जिन्हें कि मोदी काल की अमावस की रात में सारे लिबरल बिसूर-बिसूर कर याद कर रहे हैं! इसके बाद से ही देश में तमाम सार्वजनिक उपक्रमों को अम्बानियों-अडानियों के हाथ कौड़ियों के दाम बेचने की प्रक्रिया जारी है, जोकि जनता की मेहनत की गाढ़ी कमाई

से खड़े किये गये थे।

कांग्रेस ने इस प्रक्रिया को शुरू ज़रूर किया था, लेकिन जल्द ही भाजपा ने इसे और भी ज्यादा द्रुत गति से आगे बढ़ाया। पहले वाजपेयी के शासन में, जबकि भारत के इतिहास में पहली बार निजीकरण मंत्रालय बना (जिसका सम्मानजनक नाम था 'विनिवेश मंत्रालय') और फिर नरेन्द्र मोदी ने तो इस मामले में सबको पीछे छोड़ दिया। भारतीय राज्यसत्ता इस कदर बेशर्मी और नंगई से कारपोरेट घरानों के हितों के साथ कभी एकरूप नहीं हुई थी, जैसे कि अब हुई है। इसमें कोई ताज्जुब की बात भी नहीं है क्योंकि फ़्रासीवाद की एक पहचान कारपोरेटवाद भी होता है, जिसका अर्थ ही होता है कारपोरेट हितों का राज्यसत्ता के साथ एकरूप हो जाना। लेकिन सबसे अहम बात यह है कि आज देश के संसदीय वामपन्थी, कीन्सवादी, सुधारवादी, एनजीओपन्थी निजीकरण पर छाती पीट-पीटकर जो स्यापा करते हैं और डबडबाई आँखों से नेहरू काल के 'समाजवाद' को याद करते हैं, योजना आयोग के भंग होने पर टेसुए बहाते हैं, वह इस बात को या तो समझते नहीं हैं या फिर जानबूझकर समझना नहीं चाहते हैं कि ये सारे कुकर्म किसी 'महान योजना' से विचलन नहीं थे, बल्कि उस 'महान योजना' पर अमल का ही अंग थे, जोकि भारत के पूँजीपति वर्ग ने टाटा-बिड़ला जैसों के नेतृत्व में आज़ादी से पहले ही 1944 में बना ली थी। भारतीय पूँजीवाद के इतिहास के इस विकास-पथ को समझना हमारे देश में शिक्षा पर शासक वर्ग द्वारा अपनाई गई अलग-अलग नीतियों को समझने के लिए भी ज़रूरी है, जिस पर हम कुछ आगे आयेंगे।

आज़ादी के बाद अस्तित्व में आयी भारतीय पूँजीपति वर्ग की राज्यसत्ता किसी भी रूप में अंग्रेज़ों की औपनिवेशिक सत्ता से कम दमनकारी और हत्यारी नहीं साबित हुई थी। साथ ही 1960 का दशक बीतते-बीतते आज़ादी के बाद दिखलाए गये खुशहाली के सारे सपने भी चूर-चूर होने लगे थे। नेहरूवियाई 'समाजवाद' की असलियत सामने आने लगी थी। उम्मीदें टूट रहीं थीं, सपने बिखर रहे थे। इसी दौर में देश में कई आन्दोलन और विद्रोह फूटे, जोकि मेहनतकश जनता, किसानों, मज़दूरों, छात्रों-युवाओं के मोहभंग को अभिव्यक्ति दे रहे थे। 1967 में शुरू हुए नक्सलबाड़ी के क्रान्तिकारी किसान विद्रोह ने पूँजीवादी व्यवस्था को चुनौती दी, लेकिन चूँकि इस आन्दोलन की नेतृत्वकारी ताकतें देश की परिस्थिति के सही विश्लेषण में कामयाब नहीं हुईं और क्रान्तिकारी आतंकवाद व दुस्साहसवाद के भटकाव का शिकार हो गयीं, इसलिए यह विद्रोह देश के क्रान्तिकारी आन्दोलन को वह दिशा नहीं दे सका जिसकी उसे ज़रूरत थी, हालांकि इसमें हज़ारों क्रान्तिकारी युवाओं, छात्रों और कार्यकर्ताओं ने कुर्बानी दी। इसके दौरान और इसके ठीक बाद ही देश में एक शक्तिशाली युवा व

छात्र आन्दोलन भी खड़ा हुआ। लेकिन उस आन्दोलन को जयप्रकाश नारायण के रूप में एक सुधारवादी नेतृत्व एक ऐसी चौहद्दी में कैद करने में कामयाब रहा, जिसने उसे व्यवस्था के लिए कभी अर्थपूर्ण चुनौती नहीं बनने दिया। इसके अलावा, देश में 1970 के ही दशक में शक्तिशाली मजदूर आन्दोलन भी खड़ा हुआ, जिसका शिखर था 1974 की रेलवे मजदूरों की हड़ताल, जिसने कि पूरी व्यवस्था को हिलाकर रख दिया था। लेकिन यहाँ भी एक कुशल व सही कार्यदिशा से लैस राजनीतिक नेतृत्व की कमी ने उसे समूची व्यवस्था के लिए चुनौती नहीं बनने दिया।

लेकिन, इसी उथल-पुथल के दौर में पूँजीवादी शासक वर्गों के बीच भी अन्तरविरोध गहरा रहे थे। सत्ताधारी कांग्रेस पार्टी और इन्दिरा गाँधी की सरकार ने पूँजीपति वर्ग के राजनीतिक संकट से निपटने के लिए 26 जून 1975 को आपातकाल लागू कर दिया। यह कार्रवाई संविधान का उल्लंघन करके नहीं, बल्कि संविधान के दायरे में रहकर ही की गयी। इससे हमारे देश के संविधान के चरित्र के बारे में भी काफ़ी-कुछ पता चलता है। इसमें कोई ताज्जुब की बात भी नहीं है क्योंकि जो संविधान सार्विक मताधिकार के आधार पर चुनी गयी संविधान सभा द्वारा बनाया ही न गया हो और जिसे सम्पत्तिधारी वर्गों से आने वाले केवल 11.3 प्रतिशत लोगों ने द्वारा चुनी गयी संविधान सभा द्वारा बनाया गया हो, उसकी जनवादी विश्वसनीयता के बारे में जितना कम कहा जाये उतना अच्छा है। बहरहाल, आपातकाल के पूरे दौर में देश में नागरिक और जनवादी अधिकार रद्द कर दिये गये, प्रेस पर लगाम लगा दी गयी, मजदूरों और आम मेहनतकश आबादी के प्रतिरोध के सारे अधिकार छीन लिए गये, और साथ ही पूँजीवादी राजनीति के दायरे के भीतर के विपक्ष के नेताओं में से भी तमाम को जेल में भर दिया गया, ताकि वे भी देश में जनता के भीतर मौजूद भयंकर गुस्से और असन्तोष की सवारी कर सत्ता में आने में कामयाब न हो पायें।

लेकिन आपातकाल खत्म होने के बाद जो चुनाव हुए उसमें इन्दिरा गाँधी-नीत कांग्रेस की पराजय हुई और जनता पार्टी की सरकार आयी। यह एक प्रतिक्रियावादी दक्षिणपन्थी सरकार थी। जनता पार्टी कांग्रेस-विरोध के साझा कार्यक्रम पर बनी एक सतमेल खिचड़ी थी, लेकिन इसमें देश के समाजवादी नेताओं ने जो सबसे खतरनाक काम किया था, वह यह था कि गाँधी की हत्या के बाद से ही मुख्यधारा पूँजीवादी राजनीति में हाशिये पर चले गये साम्प्रदायिक फ़ासीवादी संघ परिवार को वापस मुख्यधारा में आने का मौका दिया। यह काम सबसे पहले लोहिया ने ही 1960 के दशक में संयुक्त विधायक दल के अपने प्रयोग में किया था और इसी को जनता पार्टी ने आगे बढ़ाया। गौरतलब है कि इस दौर में भी इस अपराध में भारत के संसदीय

वामपन्थी सहअपराधी रहे थे। बाद में भी वी. पी. सिंह की सरकार के दौरान प्रकारान्तर से साम्प्रदायिक फ़ासीवादियों के उभार में उनका सहयोग-सहकार रहा था। वजह यह थी कि वे हर सुधारवादी और सामाजिक-जनवादी के समान फ़ासीवाद के खतरे को कम करके आँक रहे थे। बहरहाल, पहले लोहिया के संविद सरकार के प्रयोग के जरिये और फिर जयप्रकाश नारायण की मदद से, फिर से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उसका चुनावी फ्रण्ट मुख्य धारा पूँजीवादी राजनीति में आ गये। यह भी याद दिलाना जरूरी होगा कि इस अपराध में कुछ भूमिका जवाहर लाल नेहरू की भी थी, जिन्होंने भारत के चीन युद्ध के दौरान कम्युनिज़्म-विरोधी व चीन-विरोधी प्रचार के लिए संघ परिवार की शक्तियों को खुला हाथ दे दिया था। आपातकाल के बाद जनता पार्टी की सरकार बनने के साथ संघ परिवार की मुख्य धारा में वापसी पूरी हो गयी। इससे हमारे देश के “समाजवादियों” का असली चरित्र भी काफ़ी हद तक सामने आया।

भारत में फ़ासीवादी सामाजिक आन्दोलन का उभार

“फ़ासीवाद से संघर्ष पूँजीवाद से संघर्ष के रूप में ही हो सकता है, क्योंकि यह पूँजीवाद का सबसे नंगा, सबसे बेशर्म, सबसे दमनकारी और सबसे कपटपूर्ण रूप है।”

- बर्टोल्ट ब्रेष्ट

इसके बाद 1980 में भारतीय जनता पार्टी के रूप में संघ परिवार ने अपने चुनावी फ्रण्ट को पुनर्गठित किया और फिर अपनी स्थापना के बाद के 55 वर्षों से जारी काम को आगे बढ़ाने की तैयारियाँ शुरू कर दीं: यह काम था भारत के बड़े पूँजीपतियों की सेवा के लिए निम्न मध्य वर्ग और मध्य वर्ग के एक प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन को खड़ा करना। इस फ़ासीवादी सामाजिक आन्दोलन की क्रतारों में सामाजिक व आर्थिक अनिश्चितता से आजिज आए टटपुंजिया वर्ग के युवाओं की भीड़ थी, लेकिन यह आन्दोलन सेवा देश के बड़े पूँजीपतियों के हितों की करता था। ऐसे आन्दोलन को एक काल्पनिक शत्रु देना होता है, जोकि संघ परिवार ने मुसलमानों व दलितों के रूप में दिया। 1925 से ही और विशेष तौर पर आज़ादी के बाद से 1980 तक संघ परिवार ने अपनी शाखाओं का व्यापक नेटवर्क खड़ा किया, अपनी संस्थाओं का निर्माण किया जिनमें स्कूल से लेकर अस्पताल तक शामिल थे, राज्यसत्ता के तमाम निकायों में अपने लोगों को घुसाया जैसे कि सेना, नौकरशाही, न्यायपालिका, इत्यादि। लेकिन

1980 तक संघ परिवार के पीछे एक व्यापक प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन नहीं खड़ा हो पाया था।

1970 के दशक से शुरू हुए आर्थिक संकट ने और 1980 के दशक में भारतीय पब्लिक सेक्टर पूँजीवाद के सन्तृप्ति बिन्दु पर पहुँचने से पैदा हुए संकट ने समाज में एक घोर आर्थिक असुरक्षा और अनिश्चितता का माहौल पैदा किया। इस असुरक्षा और अनिश्चितता ने टटपुंजिया वर्गों में एक प्रतिक्रिया की ज़मीन तैयार की। इसी ज़मीन का लाभ संघ परिवार और भाजपा ने उठाया। राम जन्मभूमि आन्दोलन ने इस समूची बिखरी हुई टटपुंजिया प्रतिक्रिया के समुच्चय को एक संगठित फ़ासीवादी अभिव्यक्ति दी। एक उन्मादी फ़ासीवादी भीड़ को खड़ा किया गया, धर्म और संस्कृति का हवाला देकर उसे संगठित किया गया, “हिन्दू राष्ट्र” और “रामराज्य” की स्थापना को उसकी सारी समस्याओं का समाधान बताया गया और मुसलमानों को दुश्मन और सभी समस्याओं का जिम्मेदार ठहराया गया।

इस दौरान पहले इन्दिरा गाँधी और फिर राजीव गाँधी ने “सॉफ्ट केसरिया” लाइन के ज़रिये हिन्दू आबादी का तुष्टीकरण करने का प्रयास कर संघ परिवार को और भी मदद पहुँचाई। इसके अलावा, कांग्रेस सरकार ने 1980 के दशक में अपनी नीतियों के ज़रिये सिख धार्मिक कट्टरपन्थी, दक्षिणपन्थी प्रतिक्रियावादी भिण्डरांवाले को खड़ा किया, उसका लाभ भी संघ परिवार ने पूरे देश में अपनी साम्प्रदायिक फ़ासीवादी राजनीति को मज़बूत करने में किया। दक्षिणपन्थी प्रतिक्रियावादी राजनीतियाँ हमेशा एक-दूसरे को फलने-फूलने में मदद करती हैं। दोनों को एक कल्पित शत्रु चाहिए होता है और दोनों ही अस्मितावाद पर टिकी होती हैं। अस्मितावादी राजनीति की खासियत ही यह होती है कि एक प्रकार की अस्मितावादी राजनीति हमेशा ही अन्य प्रकार की अस्मितावादी राजनीति को सम्बल पहुँचाती हैं। खालिस्तानी धार्मिक कट्टरपन्थी दक्षिणपन्थी प्रतिक्रियावादी राजनीति और संघ परिवार की हिन्दुत्ववादी साम्प्रदायिक फ़ासीवादी राजनीति ने भी 1980 के दशक में एक-दूसरे को फलने-फूलने में परस्पर मदद पहुंचाई। इसके लिए कांग्रेस सरकार भी जिम्मेदार थी, जिसने अपने राजनीतिक हितों के लिए भिण्डरांवाले को खड़ा किया था और जो बाद में भस्मासुर बन गया।

यहाँ इस बात का जिक्र करना भी ज़रूरी है कि भारत में साम्प्रदायिक फ़ासीवाद के उभार में भारत के सामाजिक-जनवादियों यानी संसदीय वामपन्थियों की भी एक महत्वपूर्ण भूमिका थी। दुनिया में हर जगह ही फ़ासीवाद का जहरीला कुकुरमुत्ता मज़दूर आन्दोलन के खण्डहर और मलबे पर ही उगता है। भारत में एक जुझारू ट्रेड यूनियन आन्दोलन का एक लम्बा इतिहास रहा था। लेकिन उसके संशोधनवादी-सुधारवादी

नेतृत्व ने उसे कभी अर्थवाद और ट्रेडयूनियनवाद की चौहदियों से आगे नहीं जाने दिया। जब पूँजीवादी व्यवस्था संकटग्रस्त होती है, व्यापक मज़दूर वर्ग में असन्तोष और विद्रोह की भावना होती है, जब टटपुंजिया वर्ग अपने जीवन की आर्थिक व सामाजिक असुरक्षा और अनिश्चितता के कारण एक हताश गुस्से और अन्धी प्रतिक्रिया में जी रहे होते हैं, तो दोनों ही सम्भावनाएँ खुली होती हैं: प्रगतिशील सम्भावना, यानी एक क्रान्तिकारी परिवर्तन के ज़रिये एक उच्चतर सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की स्थापना, और प्रतिक्रियावादी सम्भावना, टटपुंजिया वर्गों की अन्धी प्रतिक्रिया का एक प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन के रूप में उभरना जो कि पूँजीवादी व्यवस्था की सेवा करता है। पहली सम्भावना तभी कामयाब हो सकती है जबकि मज़दूर वर्ग को अर्थवाद और ट्रेडयूनियनवाद की चौहदियों से आज़ाद कर राजनीतिक प्रश्नों पर संघर्ष के लिए शिक्षित-प्रशिक्षित, गोलबन्द और संगठित किया जाये, यानी लड़ाई को वेतन और भत्ता के सवाल से आगे राज्यसत्ता के सवाल तक ले जाया जाये। लेकिन भारत के संसदीय वामपन्थियों ने भारत के मज़दूर आन्दोलन को कभी वेतन और भत्ता के सवाल से आगे ही नहीं जाने दिया, नतीजतन, मज़दूर वर्ग राजनीतिक रूप से निःशस्त्र हो गया। इसका लाभ भारत में 1970 के दशक से ही साम्प्रदायिक फ़ासीवादी शक्तियों ने उठाया और सामाजिक-आर्थिक अनिश्चितता से आजिज टटपुंजिया वर्ग की अन्धी प्रतिक्रिया को एक नक़ली दुश्मन, यानी मुख्य तौर पर मुसलमान, दलित और कम्युनिस्ट के रूप में, देकर उसके एक प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन को खड़ा किया। इसने अर्थवाद और ट्रेडयूनियनवाद के गोल चक्कर के कारण राजनीतिक रूप से निःशस्त्र हो चुके मज़दूर वर्ग को और आम मेहनतकश अवाम को सबसे ज़्यादा नुकसान पहुँचाया और देश के बड़े पूँजीपति वर्ग को सबसे ज़्यादा फ़ायदा। इस पूरी प्रक्रिया में पाप के मुख्य भागीदार भारत के सुधारवादी, संशोधनवादी, सामाजिक-जनवादी संसदीय वामपन्थी रहे, जिन्होंने कभी भी फ़ासीवाद के खिलाफ़ जुझारू संघर्ष लड़ने के लिए मज़दूर वर्ग को तैयार नहीं किया, बल्कि जहाँ इसकी सम्भावना प्रबल रूप में मौजूद थी, वहाँ भी मज़दूर वर्ग को सुधारवाद और बुर्जुआ कानूनवाद और संसदवाद में बाँधकर रख दिया।

बहरहाल, इस प्रकार पूँजीवादी व्यवस्था के संकट से पैदा अनिश्चितता, असुरक्षा और प्रतिक्रिया की लहर पर सवार होकर भारत में फ़ासीवादी आन्दोलन आगे बढ़ा। इसकी पहली बड़ी परिणति 6 दिसम्बर 1992 को बाबरी मस्जिद के ध्वंस के रूप में और फिर 1998 में वाजपेयी सरकार के बनने के रूप में सामने आयी। वाजपेयी सरकार के लगभग छह वर्ष के कार्यकाल में भाजपा ने दिखलाया कि वह वास्तव में किसके हितों की सेवा करती है। तब तक “स्वदेशी-

स्वदेशी” का राग गाने वाली भाजपा ने निजीकरण और देशी-विदेशी पूँजी की लूट की ऐसी आँधी चलायी, जिसकी मिसाल तब तक के भारत में मौजूद नहीं थी। निश्चित तौर पर निजीकरण और उदारीकरण की नीतियों की शुरुआत कांग्रेस की नरसिंह राव सरकार ने की थी, लेकिन इस ऐसी द्रुत गति से वह भी इसे लागू कर नहीं पाई थी, जिस गति से भाजपा सरकार ने लागू किया। जनता की गाढ़ी कमाई से खड़े किये गये पब्लिक सेक्टर के उपक्रमों को एक-एक करके पूँजीपतियों को औने-पौने दामों में बेचा जाने लगा। भारत के इतिहास में पहली बार अरुण शौरी के नेतृत्व में विनिवेश मंत्रालय बनाया गया, जिसका काम ही जनता की सम्पत्ति को पूँजीपतियों के हाथों में पहुँचाना था। मारुति के निजीकरण से लेकर तमाम नवरत्न कम्पनियों का निजीकरण इसी दौर में किया गया। इसी के साथ देश की आबादी के सामाजिक मनोविज्ञान के भगवाकरण के लिए भी तमाम क्रम इसी दौर में उठाये गये जैसे कि पाठ्यक्रमों को बदलना, सभी शैक्षणिक व शोध संस्थानों में अनपढ़ साम्प्रदायिक संघियों को बिठाना, इत्यादि। यह भी नहीं भूलना चाहिए कि भारतीय इतिहास का सबसे बर्बर राज्य-प्रायोजित दंगा और नरसंहार भी इसी दौर में गुजरात में हुआ, जिसमें नौटंकी के तौर पर अटल बिहारी वाजपेयी नरेन्द्र मोदी को “राजधर्म” निभाने की सलाह देकर आए थे। वजह यह थी कि वाजपेयी संघ का सॉफ्ट मुखौटे थे और कम-से-कम इतना बयान देकर उस सॉफ्ट मुखौटे की प्रभाविता को बचाए रखना जरूरी था। लेकिन असल में मोदी सरकार के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की गयी और गुजरात में मुसलमानों का घेदोकरण करने की उसे खुली छूट दी गयी।

2004 के लोकसभा चुनावों से ठीक पहले भाजपा सरकार की इन्हीं आर्थिक नीतियों के कारण अभूतपूर्व रूप से बढ़ी महँगाई और बेरोजगारी का खामियाजा वाजपेयी सरकार को भुगतना पड़ा और चुनावों में उसे पराजय का सामना करना पड़ा। नतीजतन, संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन की सरकार अस्तित्व में आयी, जिसके नेतृत्व में कांग्रेस थी। इसमें संसदीय वाम दल भी शामिल थे। इसकी एक वजह थी। उस समय समाज में बढ़ते असन्तोष और गुस्से के मद्देनजर भारत के पूँजीपति वर्ग को भी कम से कम दिखावटी तौर कुछ कल्याणवाद दिखलाना था। संप्रग सरकार के पहले कार्यकाल में संसदीय वामपन्थी और सुधारवादियों की विशेष पहलकदमी से कुछ सुधारवादी कल्याणकारी क़ानून पारित किये गये, ताकि समाज के बढ़ते असन्तोष पर कुछ ठण्डे पानी का छिड़काव किया जा सके। इनमें ग्रामीण रोज़गार गारण्टी क़ानून, सामाजिक सुरक्षा क़ानून और सूचना अधिकार क़ानून प्रमुख थे। ज़ाहिर है इनका मक़सद रोज़गार, सामाजिक सुरक्षा या सूचना के अधिकार की समस्या का निर्णायक रूप से समाधान

करना नहीं था, बल्कि एक धूम्रावरण खड़ा करना था जिससे कि लोगों के बीच पनप रहे गुस्से को कुछ समय के लिए शान्त किया जा सके। अन्ततः इन क्रान्तियों से देश की जनता को क्या हासिल हुआ है, यह तो हम सभी देख रहे हैं। 2014 में मोदी सरकार के आने से पहले ही इन क्रान्तियों को बेअसर बनाने और इनके क्रियान्वयन को बेमतलब बना देने का काम शुरू हो चुका था।

2009 में संग्रह फिर सी विजयी हुआ और दूसरे कार्यकाल में निजीकरण और उदारीकरण की जिन नीतियों को थोड़ा लगाम पर हाथ रखकर लागू किया गया था, अब उसे लगाम छोड़कर लागू किया जाने लगा। इसी बीच 2008 की वैश्विक मन्दी की शुरुआत हुई। 2011 आते-आते इसकी आँच भारतीय अर्थव्यवस्था पर भी पड़ने लगी और 13-2012 तक मुनाफे की गिरती दर का संकट भारत के पूँजीपति वर्ग के लिए भी विकराल रूप धारण कर चुका था। बहुत-से लोगों ने 2004 और 2009 के चुनावों में भाजपा की हार को फ़्रासीवाद की निर्णायक हार समझ लिया था। लेकिन ऐसा उन्होंने ही समझा था जिन्हें फ़्रासीवाद की प्रकृति और चरित्र के बारे में कुछ पता नहीं था। पूँजीवादी संकट हमेशा ही प्रतिक्रिया की ज़मीन भी तैयार करता है और क्रान्ति की भी। यदि प्रतिक्रियावादी राजनीतिक शक्तियाँ ज़्यादा संगठित और विचारधारात्मक तौर पर ज़्यादा तैयार होंगी तो वे संकटग्रस्त पूँजीवादी समाज में एक टटपुँजिया प्रतिक्रिया को पैदा करने में कामयाब होती हैं और ये प्रतिक्रिया एक फ़्रासीवादी संगठित प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन का स्वरूप भी ले सकती है। यदि क्रान्तिकारी शक्तियाँ और नेतृत्व विचारधारात्मक तौर पर कमजोर हों, राजनीतिक तौर पर बिखरे हुए हों तो इसकी सम्भावना और भी बढ़ जाती है। 2008 के संकट के बाद और 2011-12 तक उसका विनाशकारी असर भारतीय अर्थव्यवस्था पर पहुँचने के साथ भारत में भी वह सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक सन्दर्भ तैयार हो चुका था, जिसमें पूँजीपति वर्ग फ़्रासीवादी प्रतिक्रिया की शरण में जाता है।

संकट के गहराने के साथ भारतीय पूँजीपति वर्ग अपने मुनाफे की दरों को ऊपर करने के लिए मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश जनता को हासिल सभी क्रान्ती हकों को छीनने में अपना हित देख रहा था। उसे देश के मेहनतकश लोगों की श्रमशक्ति का शोषण करने के लिए खुला हाथ चाहिए था और इसमें श्रम क्रान्त, पर्यावरणीय क्रान्त, भूमि अधिग्रहण क्रान्त, देश की प्राकृतिक सम्पदा के अधिग्रहण संबंधी क्रान्त, औद्योगिक क्रान्त, कर प्रणाली इत्यादि बाधाएँ थीं। इन सभी को बदलने का अर्थ था बड़े पैमाने पर मज़दूरों, आम मेहनतकश लोगों और गरीब आबादी के गुस्से और प्रतिरोध को आमंत्रण देना। इसके लिए ही उसे तथाकथित “मज़बूत नेतृत्व” की ज़रूरत थी। फ़्रासीवादी संघ परिवार और नरेन्द्र मोदी के रूप में उसे यह “मज़बूत

नेतृत्व” दिखलाई पड़ा, जो कि इन सभी नीतियों को लोहे के हाथों से लागू कर सकता था और साथ ही जनता के प्रतिरोध को दंगों और साम्प्रदायिकता तथा जातिवाद आदि के जरिये तोड़ सकता था। इसीलिए मोदी के चुनाव प्रचार में देश के पूँजीपति वर्ग ने 10 हजार करोड़ रुपये से भी ज्यादा बहाए और उसे “मजबूत नेता”, “निर्णायक नेता”, “भ्रष्टाचार-विरोधी नेता”, “साफ़-सुथरे नेता” के रूप में प्रस्तुत किया गया जो सारी समस्याओं का समाधान कर देगा, पाकिस्तान और चीन को सबक सिखा देगा, “रामराज्य” स्थापित कर देगा। मीडिया भी मोदी के पक्ष में राय बनाने में लगा हुआ था क्योंकि वह भी कारपोरेट घरानों के ही हाथों में है। लोगों को लगा कि मोदी की “मजबूती” उनके लिए है, क्योंकि पूँजीवादी प्रचार तंत्र के हमले के समक्ष वे अरक्षित थे और सच्चाई को समझने के लिए जिस वैज्ञानिक विश्लेषण की आवश्यकता थी, उस तक उनकी पहुँच नहीं थी और क्रान्तिकारी ताकतें किसी अर्थपूर्ण रूप में उन तक यह सच्चाई ले जाने में असफल रहीं। नतीजतन, मोदी पूर्ण बहुमत के साथ सरकार में आया और तब से भारतीय जनता के लिए एक ऐसा दुस्वप्न शुरू हुआ जो अभी भी जारी है और हर दिन के साथ और भी ज्यादा विद्रूप, घृणास्पद और भयंकर होता जा रहा है।

मोदी सरकार ने जिस बेशर्मी और नगई के साथ भारत के कारपोरेट पूँजीपति वर्ग की सेवा की है, वह अभूतपूर्व है। निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों को मोदी सरकार ने जिस गति से लागू किया है, उसकी आज्ञाद भारत के इतिहास में कोई मिसाल नहीं है। रेलवे के निजीकरण, ओएनजीसी के निजीकरण, एयर इण्डिया के निजीकरण, बीएसएनएल के निजीकरण, बैंक व बीमा क्षेत्र में देशी-विदेशी पूँजी को हर प्रकार के विनियमन से छुटकारा, पूँजीपतियों को श्रम क़ानूनों, पर्यावरणीय क़ानूनों व अन्य सभी विनियमनकारी औद्योगिक क़ानूनों से छुटकारा, मजदूर वर्ग के संगठन के अधिकार को एक-एक करके छीनना: ये सारे काम मोदी सरकार ने खुले तौर पर धड़ल्ले से किये हैं। साथ में, गोदी मीडिया द्वारा झूठों, अफ़वाहों की बारिश और फ़िरकापरस्ती के प्रचार-प्रसार के जरिये आम मेहनतकश जनता से इन पूँजीपरस्त कदमों को छिपाने का काम भी मोदी सरकार ने उतनी ही अश्लीलता से किया है। मोदी सरकार की इन नीतियों के कारण ही उसके कार्यकाल में 12 करोड़ नौकरियाँ जा चुकी हैं। कोरोना महामारी के शुरू होने से पहले ही 4 करोड़ नौकरियाँ जा चुकी थीं। कोरोना महामारी के कुप्रबन्धन और उसके बाद आनन-फानन में बिना किसी तैयारी के जनविरोधी तरीके से थोपे गये लॉकडाउन के कारण अनौपचारिक क्षेत्र की अर्थव्यवस्था का अभूतपूर्व ध्वंस हुआ और करीब 8 करोड़ नौकरियाँ स्वाहा हो गयीं। सितम्बर 2020 में ही एनसीआरबी (राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो) के आँकड़े के अनुसार हर रोज 28 छात्र भारत में

आत्महत्या कर रहे हैं। 2019 में ही 42,480 गरीब किसानों व दिहाड़ी मज़दूरों ने आत्महत्या की है। 2020 में यह तयशुदा तौर पर बढ़ा होगा। मोदी सरकार ने पहले नोटबन्दी, फिर जीएसटी और फिर योजनाविहीन लॉकडाउन के ज़रिये जो स्थिति पैदा की है, उसी में हम इस भयावह तस्वीर को देख रहे हैं। इस दौरान भी मोदी सरकार ने अम्बानियों-अडानियों को सरकारी खजाने से तोहफे देना, मज़दूरों की लूट में हर प्रकार की कानूनी अड़चनों से छूट देना जारी रखा है। लॉकडाउन के दौरान ही काम के घण्टों को कानूनी तौर पर 10 से 12 घण्टे करने का, मज़दूरों को कानूनी तौर पर घटाने का प्रयास सभी राज्य सरकारों द्वारा किया जा रहा है, हालांकि इसमें भी मोदी सरकार और भाजपा की राज्य सरकारें सबसे आगे हैं। सभी केन्द्रीय विभागों में भर्तियों पर रोक लगी हुई है, विश्वविद्यालयों में अध्यापकों की भर्तियों पर रोक लगी है और बेरोज़गारों को ऐसी परीक्षाओं के फॉर्म बेचकर लूटा जा रहा है, जो होती ही नहीं हैं, अगर होती हैं तो उनके नतीजे नहीं आते, नतीजे आते हैं, तो भर्ती नहीं होती! कृषि क्षेत्र में तीन नये ऑर्डिनेंस लाए गये हैं, जिनका मकसद है कृषि क्षेत्र को देशी-विदेशी बड़ी पूँजी की लूट के लिए बिल्कुल खोल देना। **लुब्बेलुबाब यह, कि मोदी सरकार ने मात्र छह वर्षों में वे सारे काम बेहद तेज़ी से किये हैं जिसके लिए भारत के बड़े पूँजीपति वर्ग ने उसे सत्ता दी थी। इस प्रक्रिया में हर आन्दोलन, विरोध और सवाल को फ़्रासीवादी बेरहमी से कुचलने का काम भी मोदी सरकार ने किया है।**

मोदी सरकार द्वारा देश की पूँजीवादी राज्यसत्ता के उपकरणों और पूँजीवादी जनवाद की संस्थाओं को इस कदर अन्दर से नष्ट करना और उन पर फ़्रासीवादी वर्चस्व स्थापित करना पूरी दुनिया में ही फ़्रासीवादी प्रयोगों के मामले में एक मिसाल है। राज्यसत्ता के उपकरणों में फ़्रासीवादी घुसपैठ तो पिछले सत्तर वर्षों से जारी थी, लेकिन पिछले साढ़े छह वर्षों में इस लम्बे काम के नतीजे बेहद तेज़ी से सामने आए हैं। आज देश की जनता क्या न्यायपालिका से कोई उम्मीद कर सकती है? नहीं! न्यायपालिका खुले तौर पर सभी पूँजीवादी संवैधानिक उसूलों को भी किनारे करके फ़्रासीवादियों के पक्ष में निर्णय सुना रही है। क्या मीडिया से कोई उम्मीद की जा सकती है? पूरा कारपोरेट मीडिया जिस अश्लीलता के साथ फ़्रासीवादियों की गोद में बैठकर पूरे समाज में खुले तौर पर साम्प्रदायिकता, फ़िरक़ापरस्ती, अन्धविश्वास के प्रचार में लगा हुआ है, उसे पत्रकारिता कहना पत्रकारिता के सभी मानकों और उसूलों का अपमान होगा। सेना, पुलिस और सशस्त्र बलों के व्यवस्थित फ़्रासीवादीकरण को तो हम पिछले 40 वर्षों में हुए हर साम्प्रदायिक दंगे में देखते ही रहे हैं। नौकरशाही की स्थिति भी कोई भिन्न नहीं है और उसमें फ़्रासीवादी घुसपैठ को भी लम्बे समय से देखा जा सकता है। लुब्बेलुबाब यह कि समूची राज्य मशीनरी पर फ़्रासीवादियों का कब्ज़ा

है। कहीं कोई सुनवाई नहीं है। नात्सी और इतालवी फ़ासीवादी उभार के विपरीत भारत में फ़ासीवादी उभार की प्रक्रिया कुछ वर्षों में नहीं बल्कि कई दशकों में घटित हुई है। इसका एक लम्बा तैयारी काल रहा है, जिसमें इसने सीधे आमने-सामने के युद्ध की बजाय, अवस्थितिबद्ध दीर्घकालिक रणनीति अपनाई है। मोदी की सरकार बनने के साथ हम भारत में फ़ासीवादी उभार के पूर्ण होने के एक नये चरण को देख रहे हैं। चूंकि पूरी राज्य मशीनरी मोदी-शाह की फ़ासीवादी सरकार के हाथ में है, इसलिए पूँजीपरस्त नीतियों को अभूतपर्व रफ़्तार से खुल्लमखुल्ला लागू किया जा रहा है, साम्प्रदायिक दंगे और विवाद भड़का कर खुले तौर पर जनता को बाँटा जा रहा है, मीडिया के ज़रिये समाज में साम्प्रदायिकता, फ़िरकापरस्ती और जातिवाद को खुले तौर पर बढ़ावा दिया जा रहा है, हर प्रकार के प्रतिरोध के स्वर को बर्बरता से कुचला जा रहा है।

लेकिन इन सबके बावजूद मोदी सरकार जनता के प्रतिरोध को कुचलने में नाकामयाब हो रही है। उल्टे हर प्रकार संसदीय और कानूनी विपक्ष और मंच के समाप्त होने के साथ, और बेरोज़गारी, सामाजिक-आर्थिक असुरक्षा और अनिश्चितता के बढ़ने के साथ जनता का प्रतिरोध भी बढ़ रहा है। लेकिन ये प्रतिरोध जुझारू होने के बावजूद अभी महज़ स्वतःस्फूर्त और बिखरे हुए प्रतिरोध हैं। इन्हें एक स्पष्ट राजनीतिक नेतृत्व और कार्यक्रम की आवश्यकता है, जिसके बिना ये भटक सकते हैं, नाकामयाब हो सकते हैं, यहाँ तक कि प्रतिक्रियावादी स्वरूप भी ग्रहण कर सकते हैं। इसलिए जहाँ एक ओर ये स्वतःस्फूर्त युवा और मज़दूर प्रतिरोध स्वागतयोग्य हैं, वहीं इनकी सीमाएँ भी हैं और इन सीमाओं का अतिक्रमण करने के लिए एक स्पष्ट राजनीतिक कार्यक्रम व नेतृत्व के निर्माण की ज़रूरत है।

हमारे विचार में यह बताने-समझाने की अब कोई आवश्यकता नहीं रह गयी है कि मोदी काल के इस “राष्ट्रीय” दुःस्वप्न से मुक्ति के लिए भारत के क्रान्तिकारी छात्र-युवा संसदीय वामपन्थियों समेत किसी भी पूँजीवादी चुनावबाज़ दल से उम्मीद नहीं कर सकते हैं। इससे मुक्ति के लिए एक ही रास्ता है: एक देशव्यापी क्रान्तिकारी जनान्दोलन को खड़ा करना और एक क्रान्तिकारी राजनीतिक नेतृत्व और कार्यक्रम का निर्माण करना और इसमें छात्रों-युवाओं को भी अपनी केन्द्रीय महत्वपूर्ण भूमिका को समझना होगा। पूँजीवाद के खिलाफ़ लड़े बग़ैर फ़ासीवाद के खिलाफ़ नहीं लड़ा जा सकता है।

लेकिन छात्रों के तौर पर हमें सबसे पहले एक क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलन को खड़ा करने की लड़ाई को कैम्पसों के भीतर और छात्र-युवा मसलों पर कैम्पसों के बाहर भी खड़ा करना होगा। इस समूचे संघर्ष को ही हमें देश के पैमाने पर पूँजीवाद-

विरोधी फ़ासीवाद-विरोधी संघर्ष से भी जोड़ना होगा। ऐसे छात्र-युवा आन्दोलन की एक स्पष्ट दिशा तय करने के लिए हमें एक नज़र भारतीय पूँजीवाद के विकास के अलग-अलग दौरों में बदलती हुई शिक्षा नीति पर भी डालनी होगी।

भारतीय पूँजीवाद के विकास के विभिन्न दौरों के आईने में शासक वर्ग की बदलती शिक्षा नीति

भारतीय पूँजीवाद के विकास-पथ के इन विभिन्न चरणों के आईने में ही हम भारतीय शासक वर्ग की शिक्षा नीति के विकास को भी देख सकते हैं। 1948 में ही सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन हुआ। सेकेण्डरी शिक्षा के लिए पहले 1952 में मुदालियर आयोग का गठन हुआ और फिर 1964 में कोठारी आयोग का गठन हुआ। कोठारी आयोग की सिफ़ारिशों के आधार पर 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति को सूत्रबद्ध किया गया। इसके बाद 1979 में एक और राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मसौदा पेश हुआ। ये पब्लिक सेक्टर पूँजीवाद के दौर में शिक्षा के मसले पर पेश हुए कुछ प्रमुख दस्तावेज़ थे।

अगर आप इन सभी दस्तावेज़ों को ग़ौर से पढ़ें तो यह साफ़ हो जाता है कि भारत का शासक वर्ग इस सार्वजनिक क्षेत्र वाले पूँजीवाद के दौर की अपनी ज़रूरतों के अनुसार शिक्षा नीति तय कर रहा था। इसमें विश्वविद्यालय शिक्षा में ज़ोर उदारवादी (लिबरल) पूँजीवादी शिक्षा देने और राज्यसत्ता के उपकरण के लिए एक बौद्धिक कार्यशक्ति पैदा करने पर था। स्कूली शिक्षा में ज़ोर एक कुशल कार्यशक्ति पैदा करने पर था। वैसे तो इनमें से अधिकांश आयोगों की सिफ़ारिशों और शिक्षा नीति के दस्तावेज़ों में सकल घरेलू उत्पाद का 6 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करने का वायदा किया गया था, लेकिन भारतीय राज्यसत्ता ने कभी वह वायदा पूरा नहीं किया। अगर केन्द्र सरकार की बात करें तो आज यह खर्च घटते-घटते 1 प्रतिशत के करीब रह गया है और राज्य सरकारों के खर्च को मिलाकर भी यह 3.5 से 4 प्रतिशत के बीच ही रहता है। इन सभी नीति निर्धारक दस्तावेज़ों में शिक्षा में अमीर और गरीब के बीच खाई को मिटाने, एकसमान स्कूली शिक्षा लागू करने आदि की बातें भी कहीं गयीं थीं, लेकिन वे बातें दिखावा सिद्ध हुईं। एकसमान स्कूल व्यवस्था लागू करने के लिए निजी स्कूलों का तंत्र समाप्त करने की आवश्यकता थी, लेकिन तमाम सरकारों ने उनके दबदबे को बढ़ाने का ही काम किया। सरकारी स्कूल ग़रीबों (जहाँ तक वे स्कूली शिक्षा तक पहुँच पाते थे!), निम्न मध्य वर्ग और मध्य वर्ग के बच्चों से एक कुशल व अर्द्धकुशल

बौद्धिक व शारीरिक कार्यशक्ति पैदा करने का काम करते थे, जबकि निजी स्कूलों काम काम था धनाढ्य व उच्च वर्गों के बच्चों को भावी नौकरशाहों, तकनोशाहों के रूप में तैयार करना। आजादी के बाद जो संविधान लागू हुआ उसमें नीति-निर्देशक सिद्धान्तों में यह कहा गया कि संविधान के लागू होने के दस वर्ष के भीतर 0 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए स्कूली शिक्षा को निशुल्क व अनिवार्य बनाया जाना चाहिए। इसके बाद 86वां संशोधन आया जिसने धारा 21 में 21ए को जोड़ा गया। इसने इस आयु वर्ग को बदलकर 6 से 14 कर दिया गया, जिसका अर्थ था कि आरंभिक बचपन में बच्चों के प्रति राज्यसत्ता ने अपनी देखरेख व शिक्षा के औपचारिक वायदे से भी पूरी तरह हाथ झाड़ लिया। लेकिन हम सभी जानते हैं कि जैसे भी नीति-निर्देशक सिद्धान्तों का कोई अर्थ नहीं है क्योंकि वे क्रान्ती तौर पर सरकार के लिए बाध्यताकारी नहीं हैं। इसलिए उनमें आप चाहें कितनी भी अच्छी बातें कह दें, वे जनता के लिए केवल एक धोखा और फ़रेब हैं।

इसी दौर में वैज्ञानिक व उच्च तकनोलॉजिकल शिक्षा के जरिये शासक वर्ग के लिए वैज्ञानिकों, तकनोलॉजिस्ट, शिक्षकों, प्रशिक्षकों, डॉक्टरों आदि की एक जमात तैयार करने के लिए इंजीनियरिंग कॉलेज व मेडिकल कॉलेज खड़े किये गये। साथ ही एक कुशल शारीरिक कार्यशक्ति के निर्माण के लिए तकनीकी शिक्षा हेतु तकनीकी शिक्षण संस्थान पैदा किये गये। इस दौर के शासक वर्ग के शिक्षा नीति सम्बन्धी दस्तावेजों में इन ज़रूरतों का स्पष्ट तौर पर उल्लेख मिलता है। साथ ही, इन दस्तावेजों में “राष्ट्रीय चेतना” पैदा करने पर भी जोर दिया गया, जो कि देश में तीखे होते वर्ग अन्तरविरोधों के कारण विकसित हो रही वर्ग चेतना के प्रतिभार की भूमिका के लिए था। इस “राष्ट्र” में आम मेहनतकश आबादी की क्या जगह थी, यह धीरे-धीरे साफ़ होता जा रहा था।

लुब्बेलुबाब यह कि 1980 के दशक की शुरुआत से ठीक पहले शिक्षा नीति सम्बन्धी जितने भी दस्तावेज सामने आये, वे भारतीय पूँजीपति वर्ग की उस समय की ज़रूरत को पूरा करने के लिए निर्धारित किये गये थे जो इस प्रकार थीं: राज्यसत्ता के उपकरण के संचालन के लिए एक पढ़ी-लिखी कार्यशक्ति का निर्माण जो कि मध्य व उच्च मध्यवर्ग से होना था, राजकीय पूँजीवादी उद्यमों व निजी पूँजीवादी उद्यमों के लिए एक कुशल, अर्द्धकुशल व अकुशल मगर साक्षर मानसिक व शारीरिक कार्यशक्ति का निर्माण, तकनोलॉजिकल शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थानों द्वारा वैज्ञानिकों व विशेषज्ञों को तैयार करना। भारतीय पूँजीपति वर्ग ने पूँजीवादी विकास का जो रास्ता अख्तियार किया था, उसके लिए उसे इन चीज़ों की ज़रूरत थी।

1986 की शिक्षा नीति 1980 के दशक से भारतीय शासक वर्ग की बदली ज़रूरतों को प्रतिबिम्बित करती थी। यह दौर पब्लिक सेक्टर पूँजीवाद के सन्तृप्ति बिन्दु पर पहुँचने का दौर था। अब पब्लिक सेक्टर के विनियमनकारी ढाँचे में निजी पूँजीवाद घुटन महसूस कर रहा था। उसे मेहनत और कुदरत की लूट की खुली छूट चाहिए थी। इन्हीं आकांक्षाओं को राजीव गाँधी ने अभिव्यक्त किया जिन्होंने उस समय 'इंस्पेक्टर राज-कोटा राज' खत्म करने, धन्धा करने को सहज बनाने, 'कम्प्यूटर युग', आदि की बातें करनी शुरू कीं। 1986 में राजीव गाँधी सरकार नई शिक्षा नीति लेकर आयी जिसने शिक्षा क्षेत्र में निजीकरण की शुरुआत का एक फ्रेमवर्क पेश किया।

इसी फ्रेमवर्क को अधिक पूर्ण रूप में 1992 की शिक्षा नीति ने पेश किया, जबकि अर्थव्यवस्था में खुले तौर पर निजीकरण और उदारीकरण की शुरुआत हो चुकी थी। कांग्रेस की सरकार और संयुक्त मोर्चे की सरकार के दौरान शिक्षा में निजीकरण की प्रक्रिया निरन्तर आगे बढ़ती रही, लेकिन इसे असली रफ़्तार मिली वाजपेयी सरकार के कार्यकाल के दौरान।

इसके बाद भाजपा-नीत राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन की सरकार आयी, जिसमें अटल बिहारी वाजपेयी प्रधानमंत्री बने। इसी दौर में वाजपेयी सरकार ने 2000 में एक नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क पेश किया। इस दस्तावेज़ का आधार था कुमारमंगलम बिड़ला व मुकेश अम्बानी द्वारा शिक्षा पर पेश की गयी "बिड़ला अम्बानी रिपोर्ट"। यह रिपोर्ट साफ़ तौर पर कहती है कि सरकार को शिक्षा के द्वारा उद्योग के लिए मजदूर तैयार करने पर जोर देना चाहिए, शिक्षा का बाज़ारीकरण कर वहाँ प्रतिस्पर्धा का माहौल तैयार करना चाहिए, निजी विश्वविद्यालय खड़े करने चाहिए, उच्चतर शिक्षा का निजीकरण करना चाहिए, शिक्षा के लिए शुल्क पूर्ण रूप से छात्रों से लिया जाना चाहिए। इसी रफ़्त पर आधारित था 2000 का नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क। इस दस्तावेज़ ने "राष्ट्रवाद" के नाम पर शिक्षा के साम्प्रदायिकीकरण के अलावा 'मूल्य आधारित शिक्षा' की अवधारणा पेश की। इसके अनुसार, बच्चों को उनके वर्ग के अनुसार शिक्षा दी जानी चाहिए। दूसरे शब्दों में, गरीबों और निम्न मध्यवर्ग के बच्चों को तकनीकी शिक्षा, जैसे कि आई.टी.टी.आई., पॉलीटेक्निक आदि तथा अमीरों व उच्च मध्यवर्ग के बच्चों को इंजीनियरिंग, मेडिकल, मैनेजमेण्ट और बी.ए.-एम.ए. व शोध आदि तक पहुँचने का मौका मिलना चाहिए। इसमें यह कहा गया कि ग्रेजुएट व पोस्टग्रेजुएट डिग्रियों का कोई 'सिग्नलिंग इफेक्ट' नहीं है, यानी उन्हें रोजगार नहीं मिलता इसलिए समाज में बड़े पैमाने पर ग्रेजुएट-पोस्टग्रेजुएट आबादी का होना एक सामाजिक संकट पैदा करेगा। ज़ाहिर है, निजीकरण-उदारीकरण-भूमण्डलीकरण की नीतियों में लम्बे डग भर चुका भारतीय पूँजीपति वर्ग अब व्यापक छात्र-युवा आबादी

को रोज़गार देने के मौखिक वायदे से भी मुकरना चाहता था और यह तर्क बार-बार जनता के दिमाग में बिठाया जा रहा था कि शिक्षा और रोज़गार देना सरकार का काम नहीं है। इसके अलावा, वाजपेयी के प्रधानमंत्रित्व काल में ही शिक्षा के योजनाबद्ध भगवाकरण के काम को भी अंजाम देना शुरू किया गया। पाठ्यपुस्तकों को बदलना, उसमें अन्धराष्ट्रवाद और साम्प्रदायिकता का प्रचार करना, ज्योतिष विभाग जैसे विभाग विश्वविद्यालय में खुलवाना, वैदिक काल में हवाई जहाज़, एटम बम आदि के निर्माण सम्बन्धी मिथकों को स्थापित करना आदि इस दौर में व्यवस्थित तौर पर होता रहा।

2004 में भयंकर महंगाई और बेरोज़गारी के कारण और भारतीय पूँजीपति वर्ग की बदलती ज़रूरतों के अनुसार, भाजपा-नीत राजग सरकार लोकसभा चुनावों में पराजित हुई और उसकी जगह कांग्रेस नीत-संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन सरकार आयी, जिसके पहले कार्यकाल में भारत के संसदीय वामपन्थी भी उत्साह के साथ शामिल थे। 2004 से 2014 तक संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन की सरकार के दौरान भी शिक्षा के निजीकरण का काम जारी रहा, हालांकि केन्द्रीय स्तर पर पाठ्यक्रम के भगवाकरण की प्रक्रिया इस समय रुक गई थी। 2009 के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के एक मेमो में शिक्षा में विनिवेश की स्पष्ट तौर पर वकालत की गयी। इसमें विश्वविद्यालयों को मिल रही फण्डिंग में 15 प्रतिशत की भारी कटौती करने की बात की गयी। विश्वविद्यालयों को अपने पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं और अवसंरचना के लिए खुद ही फण्ड जुटाने और कम सेमिनार आदि करने की हिदायत दी गयी और कहा गया कि वे सरकार की ओर न देखें। **स्पष्ट है, सरकार से कोई भी उम्मीद रखना केवल अम्बानियों, अडानियों, टाटाओं व बिड़लाओं का विशेषाधिकार बन चुका था।** यह सिर्फ़ इससे देखा जा सकता है कि 94-1993 से 4-2003 के बीच प्रति छात्र वास्तविक खर्च 21 प्रतिशत घट गया। बताने की ज़रूरत नहीं है कि उसके बाद भी यह घटता ही गया है। उच्च शिक्षा पर सरकारी खर्च सकल घरेलू उत्पाद का 0.5 प्रतिशत भी नहीं है।

संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन सरकार ने शिक्षा का अधिकार क़ानून लाकर काफ़ी वाहवाही लूटी, जिसके अनुसार 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए स्कूली शिक्षा अनिवार्य व निशुल्क कर दी गयी। लेकिन इसके तहत सरकारी स्कूलों में किस गुणवत्ता की शिक्षा और क्या सुविधाएँ मिल रही हैं, वे सभी जानते हैं। यह सर्वज्ञात तथ्य है कि बड़े पैमाने पर सर्वशिक्षा अभियान के तहत बच्चे स्कूलों में मिड डे मील के लिए भेजे जाते हैं और उसमें भी घपलों-घोटालों, सड़ा खाना दिये जाने, एक-एक करके अण्डा, दूध, दलिया आदि की उसमें से कटौती किये जाने की खबरें दर्जनों बार

सामने आ चुकी हैं। इसके अलावा, सिर्फ 14 वर्ष तक ही स्कूली शिक्षा को निशुल्क रखने का प्रावधान भी दिखलाता है कि शासक वर्गों को आम गरीब जनता के बीच से महज साक्षर अर्द्धकुशल कार्यशक्ति चाहिए। अमीरजादों के बच्चों के लिए तो तैराकी, घुड़सवारी, आदि से लेकर कला, विज्ञान आदि के क्षेत्र में उत्कृष्ट शिक्षा के लिए महंगे प्राइवेट स्कूल मौजूद हैं! लेकिन गरीबों के बच्चों का काम है पूँजीपतियों के लिए साक्षर उजरती गुलामी के लिए तैयार भर हो जाना! वास्तव में, यह शिक्षा का अधिकार कानून शिक्षा के वास्तविक अधिकार का मखौल बनाता है। इसमें शिक्षा पर सरकारी खर्च का कोई प्रावधान नहीं है, यह स्कूलों व कॉलेजों में शिक्षा के वर्ग-आधारित पदानुक्रम को बढ़ावा देता है, सभी के लिए समान शिक्षा का इसमें कोई जिक्र नहीं है, सरकारी स्कूलों को बेहतर बनाने का भी इनमें कोई अर्थपूर्ण प्रावधान नहीं है, यह निजी स्कूलों में फ़ीस के विनियमन का भी जिक्र तक नहीं करता और 25 प्रतिशत सीटों का गरीब बच्चों के लिए आरक्षण मेहनतकश वर्ग के बच्चों की शिक्षा के लिए कतई नाक़ाफ़ी है। यह कानून शिक्षकों के ठेकाकरण की भी पूरी आज़ादी देता है। यह कानून आम मेहनतकश आबादी के लिए महज एक धोखा है। सच्चाई यह है कि आज़ाद भारत में पूँजीपति वर्ग द्वारा लागू की गयी शिक्षा नीति हमेशा ही शिक्षा में वर्ग-आधारित पदानुक्रम को बढ़ावा देती है, ताकि शासक वर्गों की विभिन्न ज़रूरतें पूरी हो सकें और विशेष तौर पर पिछले तीन दशकों में उसका जोर पूरी तरह से शिक्षा के बाज़ारीकरण का है। देश की न्यायपालिका ने भी इस काम में पूरा साथ दिया है। इसे समझने के लिए केवल आपको मोहिन जैन जजमेण्ट, उन्नीकृष्णन जजमेण्ट, टी.एम.ए. पाई जजमेण्ट पर एक निगाह डालने की आवश्यकता है।

2008 के वैश्विक संकट और 2011 तक उसके स्पष्ट प्रभाव के भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ने के साथ, भारतीय शासक वर्ग को एक फ़ासीवादी सरकार की आवश्यकता महसूस होने लगी थी। देश में बढ़ती बेरोज़गारी, गरीबी, महँगाई और घपलों-घोटालों के खिलाफ़ जनता में भारी असन्तोष मौजूद था। इन्हीं स्थितियों में कारपोरेट घरानों की ज़बर्दस्त मदद से 2014 के चुनावों में मोदी के नेतृत्व में भाजपा विजयी हुई।

मोदी सरकार आने के बाद तो शिक्षा पर बजट में सापेक्षिक कटौती और निजीकरण-उदारीकरण की रफ़्तार और भी बढ़ गयी है। छात्रों की स्कॉलरशिप, दलित छात्रों के वजीफ़े, आदि रोक दिये गये हैं, रिसर्च ग्राण्टों में भारी कटौती की गयी है, देशी-विदेशी पूँजी के लिए शिक्षा क्षेत्र के दरवाज़े खोलने में जो कसर बाक़ी रह गयी थी, उसे 'फ़ॉरेन यूनीवर्सिटीज़ बिल', आदि द्वारा पूरा कर दिया गया है। शिक्षकों की छंटनी हो रही है, खाली पद भरे नहीं जा रहे हैं और जो भर्तियाँ हो भी रही हैं वे ठेके व गेस्ट शिक्षक के

रूप में की जा रही हैं। शिक्षा क्षेत्र में अनौपचारिकीकरण की प्रक्रिया अपने अलग रूप में जारी है। छात्रों को भी बढ़ती फ़ीसों के कारण पत्राचार कोर्सों का सहारा लेना पड़ रहा है और अब तो उनकी फ़ीसों भी इतनी बढ़ा दी गयीं हैं कि एक अच्छी-खासी आबादी उसमें से भी छूट गयी है। नियमित व गुणवत्ता वाली विश्वविद्यालय शिक्षा की उम्मीद एक बड़ी युवा आबादी अब छोड़ चुकी है।

जैसे-जैसे राज्यसत्ता शिक्षा की ज़िम्मेदारी से क्रम पीछे हटाती गयी है, वैसे-वैसे पूँजीपति वर्ग ने शिक्षा के बाज़ार के ज़रिये आम घरों के छात्रों-युवाओं को लूटने और निचोड़ने का एक पूरा तंत्र खड़ा किया है, जोकि निजी कोचिंग संस्थानों, निजी हॉस्टलों, ऑनलाइन शिक्षा आदि के रूप में हमारे सामने मौजूद है। यह छात्रों-युवाओं को भयंकर तरीके से लूटने और धोखा देने का एक पूरा तंत्र है जिससे पूँजीपति वर्ग करोड़ों-अरबों का मुनाफ़ा कमाता है।

इसके अलावा, शिक्षा के साम्प्रदायिकीकरण और भगवाकरण के काम को भी अब तेज़ी से आगे बढ़ाया जा रहा है। स्कूलों की पाठ्यपुस्तकों में बदलाव, विश्वविद्यालय के करिकुलम में परिवर्तन, आदि का काम लगातार जारी है। तमाम फैकल्टियों में दक्षिणपन्थी और साम्प्रदायिक संघी “बौद्धिकों” को भरने और लगभग सभी केन्द्रीय शोध संस्थानों में संघियों को बिठाने का काम भी इस दौर में अभूतपूर्व रूप से हुआ है। जब देश के प्रधानमंत्री और शिक्षा मंत्री और तमाम विधायकों और सांसदों की डिग्रियाँ जमा करने में ही खुलेआम फर्जीवाड़ा हुआ है, तो ऐसे दकियानूस संघियों को स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों व शोध संस्थानों में नेतृत्वकारी पदों पर बिठाने में कोई अचरज भी नहीं होना चाहिए।

मोदी सरकार की नयी शिक्षा नीति इसी निजीकरण-उदारीकरण और फ़्रासीवादीकरण की नीति को और भी द्रुत गति से लागू करने का एक दस्तावेज़ है। इस नयी शिक्षा नीति का मुख्य नारा है शिक्षा के क्षेत्र से सरकार की ज़िम्मेदारी और जवाबदेही खत्म करो, उसका दरवाज़ा निजी पूँजीपतियों के लिए खोलो, सीटों को घटाओ, फ़ीसों को बढ़ाओ और शिक्षा के भगवाकरण का रास्ता साफ़ करो! यह पाठ्यक्रम के निर्धारण के स्तर पर केन्द्रीकरण और अन्य सभी मामलों में सरकार द्वारा विनियमन को पूर्ण रूप से समाप्त करने का दस्तावेज़ है।

मोदी सरकार की नयी शिक्षा नीति-2020 कॉलेजों के विश्वविद्यालयों से सम्बद्धीकरण को समाप्त करने की वकालत करती है। सभी विश्वविद्यालय व कॉलेज पूर्ण रूप से स्वायत्त बना दिये जायेंगे और एक गवर्निंग बॉडी के अधीन होंगे। इस गवर्निंग बॉडी को चुना नहीं जायेगा और इसमें दो-तिहाई सदस्य निजी फण्डदाता, सरकारी प्रतिनिधि और समाज के “जनोन्मुख बुद्धिजीवी” होंगे। इन “जनोन्मुख

बुद्धिजीवियों” को कौन चुनेगा? सरकार का शिक्षा आयोग! जाहिर है, तमाम साम्प्रदायिक फ़ासीवादियों को “जनोन्मुख बुद्धिजीवी” बताकर इस गवर्निंग बॉडी में बिठाया जायेगा, ताकि क्या और कैसे पढ़ाया जायेगा, ये अम्बानियों-अडानियों के “हिन्दू राष्ट्र” के कर्ता-धर्ता तय करें।

इसके अलावा, सरकार शिक्षा में भारी विनिवेश करेगी, सभी कॉलेजों व विश्वविद्यालयों को अपनी फण्डिंग स्वयं जुटाने के लिए कहा जायेगा, जिसका सीधा मतलब यह है कि सभी कॉलेज और विश्वविद्यालय निजी पूँजीपतियों की गिरफ्त में आते जायेंगे और शिक्षा का व्यापारीकरण इस हद तक बढ़ जायेगा कि आज जितने आम घरों के बेटे-बेटियाँ मुश्किल से कैम्पस पहुँच पा रहे हैं, वे भी नहीं पहुँच पायेंगे। उनके लिए दसवीं, बारहवीं या ज़्यादा से ज़्यादा आई.टी.आई. या पॉलीटेक्निक पास करके कुशल मज़दूर बनने और “हिन्दू राष्ट्र” के शासकों, यानी अम्बानियों-अडानियों के कारखानों में हाड़ गलाने या फिर बेरोज़गारों की ‘रिज़र्व आर्मी’ में शामिल होकर भुखमरी रेखा पर जीने के अलावा कोई रास्ता नहीं बचेगा।

शिक्षकों की भर्ती व उनके सेवा करार पर सरकार ने अपना पूरा नियंत्रण समाप्त करने का फ़ैसला कर लिया है, यानी कि अब जो भर्ती होगी, वह भी निजी पूँजीपति तय करेंगे और जाहिर है कि इसका अर्थ यह है कि शोध की डिग्रियाँ लेने और नेट जैसी योग्यता परीक्षाएँ पास करने के बाद भी युवाओं को ठेका और दिहाड़ी पर रखा जायेगा। वैसे तो इस नयी शिक्षा नीति में और कई प्रावधान हैं जो कि शिक्षा क्षेत्र का पूर्ण निजीकरण कर उसके दरवाज़ों को देशी-विदेशी पूँजीपतियों के लिए खोलने का पूरा इन्तज़ाम करते हैं, लेकिन उन सभी पर चर्चा यहाँ अपरिहार्य नहीं है। **बुनियादी बात यह है कि मोदी सरकार ने शिक्षा के पूर्ण बाज़ारीकरण और भगवाकरण की प्रक्रिया को अपने दूसरे कार्यकाल ही मुकाम तक पहुँचा देने का फ़ैसला कर लिया है और ‘नयी शिक्षा नीति 2020’ का असली मक़सद यही है।**

यही वह पूरा सन्दर्भ है जिसमें छात्रों-युवाओं में हताशा का माहौल इस कदर बढ़ा है कि आज उनमें आत्महत्याओं की दर अभूतपूर्व है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार 2018 में 10,159 लोगों ने आत्महत्या की। यह इस मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था और उसकी शिक्षा नीति द्वारा पैदा की गयी स्थितियाँ ही हैं, जिनमें अपनी आँखों में तमाम सपने संजोए ये नौजवान अपनी जिन्दगी को अपने ही हाथों खत्म करने का दर्दनाक क़दम उठा रहे हैं।

छात्र, समाज और विश्वविद्यालय: हमारे कार्यभार

यह है हमारे समाज, व्यवस्था और शिक्षा व्यवस्था की मौजूदा सच्चाई। हम छात्र इस सच्चाई से अलग-थलग नहीं रह सकते हैं। हम देख चुके हैं कि इन लूटपरस्त और मुनाफ़ापरस्त नीतियों ने हम छात्रों पर भी क्या असर डाला है। वैसे भी स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय समाज का ही अंग होते हैं, उसके बाहर नहीं होते हैं। समाज में होने वाली हर घटना का उन पर असर पड़ता है और पलटकर स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय भी समाज को बदलने में हमेशा ही अपना योगदान देते हैं। आधुनिक दुनिया में अब तक हुए एक भी इन्क़लाब की हम बात नहीं कर सकते, जिसमें कि विश्वविद्यालयों ने एक अहम भूमिका न निभायी हो। फ़्रांसीसी क्रान्ति, रूसी क्रान्ति से लेकर चीनी और वियतनामी क्रान्तियों तक स्कूली छात्रों से लेकर विश्वविद्यालय के छात्रों ने महती भूमिका निभायी है। इसके अलावा, अन्याय के विरुद्ध होने वाले हर आन्दोलन में छात्रों ने अग्रणी भूमिका निभायी है, चाहे वह भारत का स्वतंत्रता आन्दोलन हो, अमेरिका का नागरिक अधिकार व अश्वेत मुक्ति आन्दोलन हो, यूरोप और अमेरिका में वियतनाम युद्ध विरोधी आन्दोलन हो, चीन का मई 1919, 4 आन्दोलन हो, भारत का 1970 के दशक का युवा आन्दोलन हो, छात्रों-युवाओं ने हमेशा से इन आन्दोलनों को नेतृत्व दिया है और उनकी अगली क्रतारों में रहे हैं।

विश्वविद्यालय समाज का ही अंग होते हैं। समाज में मौजूद हालात विश्वविद्यालय के भी हर पहलू को प्रभावित करते हैं। हमारे समाज में भी आज जो माहौल है, उसमें हम छात्रों को न सिर्फ़ विश्वविद्यालय के भीतर अपनी भूमिका तय करनी होगी बल्कि समाज में जारी संघर्ष में भी अपनी जगह निर्धारित करनी होगी। इतिहास के रथ का चक्का युवाओं के गर्म खून से लथपथ होता है। **युवा रक्त की गर्मी से ही वह बर्फ़ की घाटी पिघलेगी, जिसमें हमारा देश आज फंसा हुआ है।**

लेकिन निश्चित तौर पर हमें सबसे पहले वहाँ संघर्ष शुरू करना होगा जहाँ हम हैं। जहाँ हम पढ़ रहे हैं, जहाँ हम लड़ रहे हैं। इसलिए सबसे पहले विश्वविद्यालय की संस्था और मौजूदा पूँजीवादी समाज में उसकी स्थिति को भी समझना बेहद ज़रूरी है।

विश्वविद्यालय को हमारे समाज में शासक वर्गों के हितों की सेवा के लिए उपकरण तैयार करने का कारख़ाने के तौर पर बनाया और चलाया जाता है। उसके पाठ्यक्रम, उसके निर्माण, संचालन और प्रबन्धन की पूरी प्रक्रिया में छात्रों और व्यापक मेहनतकश जनता की कोई भूमिका नहीं होती है। मौजूदा समाज में पूँजीपति शासक वर्ग के वर्चस्व को सुनिश्चित करने में विश्वविद्यालय की संस्था भी एक भूमिका निभाती है। ज्ञान-विज्ञान की तमाम शाखाओं को व्यवस्थित करने, उनका शिक्षण व प्रशिक्षण करने को जो तरीका अपनाया जाता है, वह समाज के सभी सदस्यों को एक समान और जनवादी तरीके से शिक्षा नहीं देता है। यह अलग-अलग वर्गों को

अलग-अलग प्रकार की शिक्षा देता है।

उच्च व उच्च मध्यवर्ग के युवाओं को उच्चतर शिक्षा के ये संस्थान ऐसी शिक्षा देते हैं, जिससे कि वैज्ञानिकों, तकनोशाहों, नौकरशाहों, शासक वर्ग के बौद्धिक प्रतिनिधियों की एक छोटी-सी ऐसी जमात पैदा हो सके, जो कि शासक वर्ग के शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए आवश्यक होती है। यह शिक्षा एक छोटी-सी आबादी के लिए सुरक्षित होती है।

इसके अलावा, मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग के युवाओं को जो शिक्षा मिलती है, वह उन्हें शासक वर्ग के लिए उपयोगी बौद्धिक व शारीरिक श्रमिक में तब्दील करती है। हमें वही पढ़ाया जाता है और उसी तरह से पढ़ाया जाता है कि हम पूँजीपति वर्ग के उपयोगी कारक बन सकें; उनके उपक्रमों के मजदूर, प्रबन्धक, आदि की भूमिका निभा सकें। और अगर हमें ऐसा कोई काम नहीं मिलता, तो पढ़ाई के बाद हम बेरोज़गारों की उस रिज़र्व आर्मी का आकार बढ़ा सकें, जो कि रोज़गारशुदा मजदूरों और कर्मचारियों के भी मोलभाव की ताक़त को कम कर देता है और उनकी औसत आमदनी को भी कम कर देता है। पूँजीपतियों को इसलिए भी एक विशालकाय बेरोज़गार कामगार आबादी की ज़रूरत होती है, क्योंकि जब भी वह नये निवेश करता है और विस्तारित पुनरुत्पादन करता है, तो उसे सस्ती श्रमशक्ति तत्काल उपलब्ध हो।

व्यापक मजदूर व मेहनतकश आबादी के बेटे-बेटियाँ तो उच्चतर शिक्षा के इन संस्थानों तक पहुँच ही नहीं पाते हैं। एक बड़ी तादाद स्कूली शिक्षा पूरी ही नहीं कर पाती है। कुछ हैं जो बारहवीं पास कर स्कूली शिक्षा पूरी कर लेते हैं। और उससे भी कम वे होते हैं जो बारहवीं के बाद आई.टी.आई. या पॉलीटेक्निक आदि करके कुशल मजदूर बनने की क्षमता अर्जित कर लेते हैं, हालाँकि उनमें से भी तमाम हमाली और बेलदारी करते हुए मिल जाते हैं। इस आबादी को तो इतिहास, विज्ञान आदि की शिक्षा से वंचित ही रखा जाता है। इसे केवल वहाँ तक ही पढ़ने के अवसर मिलते हैं कि वह कुशल या अर्द्धकुशल मजदूर तक बन सके।

उच्चतर शिक्षा के संस्थान व विशेषकर विश्वविद्यालय ये सारे काम करते हैं। विश्वविद्यालय एक तरफ़ शासक वर्गों के लिए ज़रूरी वैज्ञानिकों, तकनोशाहों, नौकरशाहों, राजनीतिज्ञों, व बौद्धिक प्रतिनिधियों की एक छोटी-सी जमात पैदा करते हैं। वहीं दूसरी ओर वे एक पढ़ी-लिखी कुशल कार्यशक्ति तैयार करते हैं, जो काम पर लगी तो पूँजीपतियों के मुनाफ़े की मशीनरी को सुचारू रूप से चलाती है और अगर काम पर नहीं लगी तो रोज़गारशुदा आबादी की मोलभाव की ताक़त को घटाती है और सस्ते श्रमशक्ति की आपूर्ति को सुनिश्चित करती है, जिसकी पूँजीपतियों को हमेशा ही ज़रूरत होती है।

इसके अलावा, हमें जो पढ़ाया जाता है और जिस तरह पढ़ाया जाता है,

उसका काम मौजूदा यथार्थ को हमारे सामने उजागर करना नहीं है, बल्कि उसके बारे में उस तरीके से सोचने का आदी बनाना है, जो तरीका मौजूदा हुक्मरानों के लिए बेहतर हो। जैसा कि लातिन अमेरिकी लेखक एदुआर्दो गालियानो ने कहा है:

“जिस धरती पर हर मिनट एक बच्चा भूख से मरता हो, वहाँ शासक वर्गों की निगाह से चीजों को देखने की आदत डलवाई जाती है।”

विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों को लेकर हमेशा जो संघर्ष होता है, वह कोई संयोग नहीं है बल्कि इसलिए है क्योंकि पाठ्यक्रम हमेशा ही विश्वविद्यालय में तैयार हो रही नई पीढ़ी को शासक वर्ग के नजरिये से सोचने के लिए आदी बनाने के लिए बनाया जाता है और उसे लेकर पूँजीपति वर्ग के ही अलग-अलग हिस्सों के अलग-अलग मॉडलों में टकराव मौजूद होता है।

विश्वविद्यालय पर व्यापक मेहनतकश अवाम का कोई जनवादी नियंत्रण नहीं होता। वहाँ क्या पढ़ाया जायेगा, कैसे पढ़ाया जायेगा, शिक्षकों की भर्ती किस प्रकार होगी, फ़ीस आदि की व्यवस्था किस प्रकार होगी, किस प्रकार की सुविधाएँ मुहैया कराई जायेंगी, ये पूरी तरह से शासक वर्ग की सेवा में लगे विचारक, राजनीतिज्ञ, नौकरशाह व तकनोशाह तय करते हैं। नतीजतन, स्वयं विश्वविद्यालय भी एक कारखाना बन जाता है जो कि पूँजीवादी शासन की मशीनरी को सुचारू रूप से चलाने वाली एक छोटी-सी पेशेवर जमात पैदा करता है, कुशल व अर्द्धकुशल शारीरिक व मानसिक श्रम करने वालों की एक भारी आबादी पैदा करता है। और साथ ही यह एक ऐसा कारखाना होता है जो खुद शासक वर्गों को मुनाफ़ा पैदा करके देता है।

लेकिन इसके साथ ही विश्वविद्यालय व अन्य सभी शिक्षण संस्थान शासक वर्गों के लिए एक विचारधारात्मक भूमिका भी निभाते हैं। एक ओर ये मानसिक श्रम और शारीरिक श्रम के विभाजन को लगातार उत्पादित व पुनरुत्पादित करते हैं और इस रूप में मौजूदा पूँजीवादी समाज के सम्बन्धों को भी उत्पादित व पुनरुत्पादित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

वहीं दूसरी ओर ये शासक वर्गों के विचारधारात्मक वर्चस्व को भी सुनिश्चित करने का काम करते हैं। मौजूदा व्यवस्था के प्रति आस्था पैदा करना, शासक वर्गों के प्रति आस्था पैदा करना, मौजूदा व्यवस्था को प्राकृतिक या नैसर्गिक बताना, लालच, स्वार्थ, प्रतिस्पर्द्धा को मानव स्वभाव बताना, अन्यायपूर्ण नियमों व क़ानूनों के प्रति श्रद्धा-भाव पैदा करना एक अन्यायपूर्ण व्यवस्था में शासक वर्गों द्वारा संचालित समूची शिक्षा व्यवस्था का प्रकार्य होता है। स्कूलों से लेकर विश्वविद्यालयों तक यह काम बदस्तूर जारी रहता है। कहीं यह बेहद प्रत्यक्ष और खुले तौर पर होता है तो कहीं यह घुमाफिराकर होता है। **यह अनायास नहीं है कि शासक वर्ग स्कूलों से**

लेकर विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम के निर्माण के काम में इतनी दिलचस्पी लेता है और अक्सर शासक वर्ग के विभिन्न धड़ों के भीतर भी इसे लेकर कशमकश चलती रहती है।

उपरोक्त कारणों से विश्वविद्यालय महज ज्ञान और विज्ञान अर्जित करने की जगहें मात्र नहीं हैं। स्वयं ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में एक वर्ग संघर्ष जारी रहता है। ज्ञान और विज्ञान के शिक्षण-प्रशिक्षण में लगी ये संस्थाएँ भी वर्गोत्तर नहीं होती हैं, बल्कि वहाँ भी एक वर्ग संघर्ष जारी रहता है। जो शासन में काबिज होते हैं, वे इन सभी शिक्षण संस्थाओं को अपने वर्ग हितों के अनुसार संचालित करने का प्रयास करते हैं और वहीं आम घरों से जाने वाले युवा भी इन प्रयासों को निष्क्रियता से स्वीकार नहीं करते हैं। विश्वविद्यालय के भीतर क्या पढ़ाया जाये, कैसे पढ़ाया जाये, कौन पढ़ाये और साथ ही विश्वविद्यालय के भीतर कौन पढ़े, विश्वविद्यालय की फ्रीस संरचना क्या हो, उसमें कितनी सीटों की उपलब्धता हो, इन सभी सवालों पर एक संघर्ष जारी रहता है।

समूची शिक्षा व्यवस्था हमारे देश की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था से कोई अलग चीज़ नहीं है बल्कि उसका एक हिस्सा है। जो जमातें हमारे देश की समूची व्यवस्था पर काबिज हैं, वे ही शिक्षा व्यवस्था को भी संचालित करती हैं। जब तक हमारे देश की समूची व्यवस्था ऐसे क्रान्तिकारी परिवर्तन के द्वारा बदलती नहीं, जिसकी बात शहीदे-आज़म भगतसिंह ने की थी, तब तक हम अलग से शिक्षा व्यवस्था व विश्वविद्यालय को भी आमूलगामी तौर पर नहीं बदल सकते। जब तक देश में समूचे उत्पादन, राज-काज और समाज के पूरे ढाँचे पर मेहनतकश वर्गों का नियंत्रण स्थापित नहीं होता, तब तक हम एक मानव-केन्द्रित, जनवादी, सेक्युलर और समानतामूलक शिक्षा और विश्वविद्यालय की उम्मीद नहीं कर सकते, जिस पर 90 फ्रीसदी मेहनतकश जनता का क्रान्तिकारी नियंत्रण हो।

इसलिए दूगामी तौर पर एक जनवादी, सेक्युलर, समानतामूलक व मानव-केन्द्रित शिक्षा व्यवस्था और विश्वविद्यालय की लड़ाई एक समाजवादी समाज के संघर्ष से जुड़ी हुई है।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि आज विश्वविद्यालय में जनवाद, सेक्युलरिज़्म, मेहनतकश जनता द्वारा उसके जनवादी नियंत्रण, वैज्ञानिक व तर्कसंगत शिक्षा आदि के लिए कोई संघर्ष करने की आवश्यकता नहीं है। उल्टे समाज के अन्य सभी हिस्सों के साथ, यानी कारखानों, खेतों, दफ्तरों के साथ, विश्वविद्यालय कैम्पसों में भी इन सभी सवालों पर अगर आज से ही लड़ाई शुरू नहीं की गयी तो समूचे समाज में भी परिवर्तन की लड़ाई आगे नहीं बढ़ सकती है।

‘दिशा’ का नारा - भविष्य हमारा!

“भारतीय रिपब्लिक के नौजवानो, नहीं सिपाहियो, क्रतारबद्ध हो जाओ! आराम के साथ न खड़े रहो और न ही निरर्थक क्रदमताल किये जाओ। लम्बी दरिद्रता को, जो तुम्हें नाकारा कर रही है, सदा के लिए उतार फेंको। तुम्हारा बहुत ही नेक मिशन है। देश के हर कोने और हर दिशा में बिखर जाओ और भावी क्रान्ति के लिए, जिसका आना निश्चित है, लोगों को तैयार करो। फर्ज के बिगुल की आवाज़ सुना। वैसे ही खाली जिन्दगी न गंवाओ।”

- शहीदे-आज़म भगतसिंह

भगतसिंह के ये शब्द आज भी अलग ऐतिहासिक सन्दर्भ में प्रासंगिक हो उठे हैं। ‘दिशा छात्र संगठन’ का मानना है कि शहीदे-आज़म के इन्हीं शब्दों की रोशनी में आज छात्रों-युवाओं को स्कूलों, कैम्पसों और समाज के भीतर अपनी भूमिका को समझना होगा और पूरे जी-जान से उसे निबाहने में जुटा जाना होगा।

हमें एक ऐसे स्कूल और विश्वविद्यालय के लिए लड़ना है जहाँ सभी को अपनी रुचि के अनुसार समान और निशुल्क शिक्षा मिले, जहाँ जनवादी, सेक्युलर, वैज्ञानिक शिक्षा मिले, जो मानसिक और शारीरिक श्रम के विभेद को खत्म करे, जो एक सच्चे और पूर्ण इन्सान का निर्माण करे। ऐसे विश्वविद्यालय के लिए संघर्ष आज से ही शुरू करना होगा। इस संघर्ष का अर्थ है सभी के लिए निशुल्क व एकसमान शिक्षा, सभी के लिए शुरू से उत्पादक श्रम का प्रशिक्षण, पूरे देश में एकसमान स्कूल व्यवस्था के लिए संघर्ष, हर नागरिक के लिए उसकी अपनी भाषा में शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था के लिए संघर्ष, विश्वविद्यालय कैम्पसों में हर प्रकार के जातिगत भेदभाव के ख़ात्मे, धार्मिक अल्पसंख्यकों के प्रति भेदभाव के ख़ात्मे, स्त्रियों के प्रति भेदभाव के ख़ात्मे के लिए संघर्ष और रोजगार गारण्टी के हक़ के लिए संघर्ष।

विश्वविद्यालय परिसर के भीतर इन सभी मुद्दों पर संघर्ष में एक अहम मुद्दा कैम्पस जनवाद का भी है। हमारे देश में अधिकांश विश्वविद्यालयों में सही अर्थों में कैम्पस जनवाद को कभी ढंग से लागू ही नहीं किया गया। जिन कैम्पसों में एक हद तक कैम्पस जनवाद मिला भी, वह भी छात्रों के जुझारू संघर्ष का नतीजा था। देश में निजीकरण, उदारीकरण की नीतियों और शिक्षा के निजीकरण की नीतियों के साथ कैम्पसों में जो थोड़ा-बहुत जनवादी स्पेस था, वह तो पहले से ही संकुचित होने लगा था। लेकिन फ़ासीवादी उभार के वर्तमान दौर में कैम्पस में बचे-खुचे जनवादी स्पेस का जिस गति से क्षरण हुआ है, वह अभूतपूर्व है।

छात्र संघ इने-गिने विश्वविद्यालयों के छात्रों को ही हासिल है। यानी, उन्हें

जनवादी प्रतिनिधित्व तक का अधिकार नहीं दिया गया है। जहाँ कहीं यह हक हासिल भी है, वहाँ भी इसे लिंगदोह कमीशन की सिफ़ारिशों को लागू करके अधूरा और बेजान बना दिया गया है। साथ ही, कैम्पसों के अन्दर विचारों के आदान-प्रदान और संघर्ष के लिए जितने भी मंच व स्थान थे, उन्हें समाप्त किया जा रहा है, कैम्पसों के भीतर खाकी वर्दी की मौजूदगी को बढ़ाया जा रहा है, निजी सिक्वोरिटी कम्पनियों को न जाने किसकी सुरक्षा के नाम पर छात्रों के ही दमन का अधिकार दिया जा रहा है, साथ ही, कैम्पस जनवाद के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाले हरेक छात्र को विश्वविद्यालय प्रशासन प्रताड़ित करने का कोई अवसर नहीं छोड़ रहा है।

वहीं दूसरी ओर, तमाम पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियों के छात्र संगठनों को कैम्पस का गुण्डागर्दी, मनी पावर-मसल पावर के नंगे प्रदर्शन का अड्डा और विधायक-सांसद बनने का प्रशिक्षण केन्द्र बनाने की पूरी आज़ादी दे दी गयी है। विशेष तौर पर, संघ परिवार के “छात्र” गिरोहों को कैम्पस के भीतर फ़ासीवादी हिंसा और आतंक फैलाने के लिए खुला हाथ दे दिया गया है। हालिया दिनों में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, जादवपुर विश्वविद्यालय, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, जामिया मिलिया, मुम्बई विश्वविद्यालय, एफ.टी.आई.आई. आदि में छात्रों पर फ़ासीवादी हमले से लेकर तमाम विश्वविद्यालयों में संघर्षरत छात्रों और जनवाद-प्रिय शिक्षकों तक पर इन गुण्डा वाहिनियों के हमले हम देख चुके हैं। ऐसे हालात में कैम्पस के अन्दर जनवाद के लिए संघर्ष भी आज छात्र आन्दोलन का एक अहम केन्द्रीय मसला बन गया है, हालांकि वह उसके एजेण्डा में हमेशा से ही था।

लेकिन छात्र आन्दोलन का अर्थ महज़ विश्वविद्यालय कैम्पस के अन्दर मौजूद आन्दोलन नहीं होता है। छात्र आन्दोलन देश के हर उस मुद्दे पर अवस्थिति अपनाता है, जो देश की शोषित और उत्पीड़ित जनता को प्रभावित करता है। छात्र आन्दोलन कैम्पस के भीतर जनवाद, सेक्युलरिज़्म, बराबरी, शिक्षा व रोज़गार के बुनियादी हक़ के लिए लड़ने के साथ पूरे देश में शोषण व उत्पीड़न के खिलाफ़ भी आवाज़ उठाता है। एक छात्र एक इन्सान है, एक देश का नागरिक है, एक समाज का सदस्य है और वह एक श्रमिक भी है। वह देश में मजदूरों के शोषण और दमन के मुद्दों से प्रभावित हुए बिना भी नहीं रह सकता है, वह व्यापक मेहनतकश दलित आबादी के खिलाफ़ होने वाले जातिगत उत्पीड़न पर शान्त नहीं रह सकता है, वह औरतों और आदमियों की गैर-बराबरी को स्वीकार नहीं कर सकता है, वह दमित राष्ट्रों व राष्ट्रीयताओं के संघर्षों के प्रति भी तटस्थ नहीं रह सकता है। संक्षेप में, वह समाज में किसी भी रूप में जारी अन्याय, शोषण और असमानता के प्रति असम्यूक्त नहीं रह सकता है। यही वजह है कि छात्र आन्दोलन का सरोकार समाज में किसी भी रूप में जारी अन्याय और शोषण से होता है, वह उसके खिलाफ़ भी आवाज़ उठाता है, वह

उसके खिलाफ भी लड़ता है। हमारे देश के राष्ट्रीय आन्दोलन से लेकर दुनिया की तमाम महान क्रान्तियों में छात्र आन्दोलन की महती भूमिका थी। कई क्रान्तियों की तो शुरुआत ही छात्रों के आन्दोलनों से हुई थी। आज भी छात्र आन्दोलन विश्वविद्यालय कैम्पस के तमाम मुद्दों पर संघर्ष तक ही सीमित नहीं रह सकता है, बल्कि वह विश्वविद्यालय की चौहदियों का अतिक्रमण करेगा और समाज में न्याय और समानता के लिए हर संघर्ष के साथ अपने आपको जोड़ेगा।

एक ऐसा क्रान्तिकारी छात्र आन्दोलन खड़ा करने का काम कोई ऐसा छात्र संगठन नहीं कर सकता है जो कि किसी पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टी का छात्र फ़्रण्ट हो। ये सभी पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियाँ पूँजीपति वर्ग के ही किसी न किसी हिस्से की नुमाइन्दगी करती हैं। ऐसे में, वे उन ही नीतियों के विरुद्ध छात्रों के आन्दोलन को खड़ा करने का काम नहीं कर सकती हैं, जो उनकी आका पार्टियों ने बनाये हैं। जहाँ तक शिक्षा के निजीकरण, उदारीकरण और व्यावसायीकरण का प्रश्न है, इस पर सभी पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियाँ एकजुट हैं और जब भी सत्ता में होती हैं, तो अपने-अपने तरीके से इसे अंजाम भी देती हैं। जाहिर है, इनके खिलाफ़ इन पार्टियों के पिछलग्गू छात्र संगठन नहीं लड़ सकते हैं।

संसदीय वामपन्थी पार्टियाँ भी पूँजीपति वर्ग के हितों का ख़्याल रखने में कहीं पीछे नहीं रही हैं। पश्चिम बंगाल में और केरल में वाम मोर्चा की सरकारों ने अपने शासन काल में क्या किया है, इससे भी सभी वाकिफ़ हैं। अभी देश की आम मेहनतकश जनता और आम छात्र-नौजवान सिंगूर, लालगढ़ और नन्दीग्राम में वाम मोर्चा सरकार के कारनामों को नहीं भूले हैं। वे भूलें नहीं हैं कि वाम मोर्चे के ही मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य ने हड़ताली मज़दूरों को हिदायत दी थी कि अब हड़ताल की रणनीति का दौर बीत चुका है और अब श्रम को पूँजी के साथ हाथ मिलाकर चलना होगा। जो पार्टियाँ अभी तक चीन को एक समाजवादी देश मानती हैं, जो कि स्वयं पूँजीवादी देशों के लिए निजीकरण-उदारीकरण और मज़दूर वर्ग के नंगे दमन का एक मॉडल बन चुका है, उन्हें कम्युनिस्ट पार्टियाँ वही मान सकते हैं, जो नाम देख कर धोखा खा जाते हैं। संशोधनवाद और अवसरवाद के दलदल में समा चुके इन संसदीय वामपन्थी दलों की असलियत आज व्यापक जनता के भी सामने आ चुकी है। लेकिन इनके छात्र संगठनों में अक्सर तमाम ज़हीन और संजीदा नौजवान शामिल होते हैं क्योंकि उन्हें भगतसिंह की छवि आकृष्ट करती है, जिसका ये सभी वामपन्थी छात्र संगठन इस्तेमाल करते हैं। ऐसे सभी संजीदा और ज़हीन छात्र साथियों से भी हम उपरोक्त सवालों पर गहराई से सोचने की अपील करते हैं।

वैसे भी, हमारा यह मानना है कि एक क्रान्तिकारी छात्र संगठन को विचारधारा के आधार पर नहीं बल्कि एक क्रान्तिकारी साझा न्यूनतम कार्यक्रम के आधार पर गठित होना चाहिए। छात्र संगठन एक जनसंगठन है, कोई पार्टी नहीं जो कि

एक निश्चित विचारधारा पर गठित हो। यदि यह छात्रों के व्यापक जनसमुदायों को गोलबन्द और संगठित करने का लक्ष्य रखता है, तो उसे एक क्रान्तिकारी साझा न्यूनतम कार्यक्रम का निर्माण करना चाहिए जो कि आम घरों से आने वाले गरीब और निम्न मध्यवर्गीय छात्रों के हितों की नूमाइन्दगी करता हो, जनवाद और सेक्युलरिज्म के उसूलों को मानता हो, जातिवाद और पितृसत्ता का निषेध करता हो, राष्ट्रीय दमन का विरोध करता हो और इंसाफपसन्द और तरक्कीपसन्द हो। 'दिशा छात्र संगठन' हर ऐसे छात्र-युवा को संगठनबद्ध करने में विश्वास करता है, जो उसके साझा न्यूनतम कार्यक्रम और संविधान से सहमति रखते हैं। विचारधारा पर आधारित न होने का अर्थ यह नहीं है कि छात्र संगठन अराजनीतिक होता है। निश्चित तौर पर, उसकी एक राजनीति होती है, मगर वह एक क्रान्तिकारी साझा न्यूनतम कार्यक्रम पर आधारित होती है, न कि विचारधारा पर। यदि ऐसा न हो तो कोई छात्र संगठन सही मायने में जनसंगठन हो ही नहीं सकता है।

कोई क्रान्तिकारी छात्र संगठन निश्चित तौर पर किसी क्रान्तिकारी पार्टी को समर्थन कर सकता है, यदि उस पार्टी का कार्यक्रम उस साझा न्यूनतम कार्यक्रम की पुष्टि करता हो, जिसके आधार पर क्रान्तिकारी छात्र संगठन गठित हो। लेकिन इसके बावजूद वह छात्र संगठन उस पार्टी का 'छात्र फ्रण्ट' नहीं बन जाता है। यदि ऐसा हो तो भी वह क्रान्तिकारी छात्र संगठन सही मायने में एक क्रान्तिकारी जन संगठन नहीं रह जायेगा।

'दिशा छात्र संगठन' उपरोक्त विचारों व एजेण्डा पर सहमत तमाम छात्र संगठनों व मंचों का संघ है। 'दिशा' का साझा न्यूनतम कार्यक्रम उपरोक्त बुनियादी विचार-बिन्दुओं पर आधारित है।

'दिशा छात्र संगठन' ऐसे छात्रों-युवाओं का संगठन है जिन्होंने सपने देखना नहीं छोड़ा है, जिन्होंने न्याय और समानता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को बरकरार रखा है, जिन्होंने बदलाव और तरक्की के लिए जद्दोजहद करने का जज़्बा नहीं खोया है, जो एक समानतामूलक, न्यायपूर्ण, जनवादी और सच्चे मायने में सेक्युलर समाज के लिए संघर्ष को समर्पित हैं।

'दिशा छात्र संगठन' ऐसे छात्रों-युवाओं का संगठन है जो किसी भी आधार पर राजनीतिक व सामाजिक उत्पीड़न को स्वीकार नहीं करते, चाहे वह जाति के आधार पर हो, जेण्डर के आधार पर हो, लैंगिक पहचान या चयन के आधार हो, क्षेत्र के आधार पर हो, भाषा के आधार पर हो, धर्म के आधार पर हो, नृजातीयता के आधार पर हो, या फिर राष्ट्रीय आधार पर हो। 'दिशा' सामाजिक व राजनीतिक उत्पीड़न के इन सभी रूपों के विरुद्ध संघर्ष करने को समर्पित है।

'दिशा छात्र संगठन' शहीदे-आज़म भगतसिंह के सपनों के भारत के निर्माण के लिए वचनबद्ध है। यह सपना कोई शेखचिल्ली का सपना नहीं था, बल्कि आधुनिक भारत के सबसे मेधावी क्रान्तिकारी द्वारा वैज्ञानिक आधार पर पेश एक कार्यक्रम है: एक

समाजवादी भारत का निर्माण जिसमें उत्पादन, राज-काज और समाज के पूरे ढाँचे पर उत्पादन करने वाले वर्गों का हक हो, और फ़ैसला लेने की ताकत उसके हाथों में हो; जहाँ आंसुओं के समन्दर में ऐश्वर्य के टापू न जगमगा रहे हों; जहाँ देश की नौजवानी को बेरोज़गारी, मुफ़लिसी और हताशा में जिन्दगी न गुज़ारनी पड़े; जहाँ मेहनतकश आबादी को गरीबी, जहालत और भुखमरी की जिन्दगी न नसीब हो। एक ऐसी व्यवस्था जिसमें समूचे उत्पादन और उसके वितरण का मक़सद मुट्टी भर पूँजीपतियों का मुनाफ़ा न हो, बल्कि जहाँ समूचे उत्पादन और वितरण को सुनियोजित तरीक़े से संचालित किया जाये, ताकि समस्त सामाजिक ज़रूरतों को पूरा किया जा सके। एक ऐसी व्यवस्था ही हमें गरीबी, भूख, महँगाई, कुपोषण, बेरोज़गारी, अशिक्षा, अनिश्चितता और असुरक्षा, पर्यावरणीय विनाश, फ़िरकापरस्ती, युद्धों, राष्ट्रीय दमन, जातिवाद, पितृसत्ता और तमाम क्रिस्म के सामाजिक उत्पीड़नों से मुक्ति दे सकती है। यही था शहीदे-आज़म भगतसिंह का सपना और 'दिशा' इसे पूरा करने के लिए संघर्ष में योगदान करने को वचनबद्ध है और इसे सच में तब्दील करने के किसी भी क्रान्तिकारी आन्दोलन में 'दिशा' अपने क्षमता के अनुसार हर-हमेशा शिरक़त करेगी।

‘दिशा छात्र संगठन’ ऐसे छात्रों-युवाओं का संगठन है जो मानते हैं कि शिक्षा और रोज़गार देश के हर नागरिक का मूलभूत अधिकार है। हर किसी को समान एवं निशुल्क शिक्षा देना सरकार की ज़िम्मेदारी है। भारत के संविधान में समान एवं निशुल्क शिक्षा के हक़ को नीति-निर्देशक सिद्धान्तों में डालकर भारत की जनता के साथ एक बेशर्म विश्वासघात किया गया था। इसे मूलभूत अधिकार के रूप में स्वीकार करने के लिए भारतीय पूँजीवादी सत्ता को बाध्य करने के लिए देश के पैमाने पर एक विशाल और शक्तिशाली छात्र आन्दोलन खड़ा करने की ज़रूरत है। साथ ही, जीने के अधिकार को मूलभूत अधिकार मानना लेकिन ‘काम के हक़’ या रोज़गार गारण्टी के अधिकार को मूलभूत अधिकार न मानना भी भारतीय हुक्मरानों द्वारा भारत की जनता के साथ की गयी ग़द्दारी थी। इसलिए रोज़गार गारण्टी को भी मूलभूत अधिकार के तौर पर स्वीकार करने के लिए पूँजीपति वर्ग को बाध्य करने हेतु एक देशव्यापी जुझारू जनान्दोलन खड़ा करने को 'दिशा' अपने केन्द्रीय कार्यभारों में से एक मानती है।

ये सभी संघर्ष अलग नहीं हैं। वजह यह है कि इन सभी संघर्षों में आम मेहनतकश जनता के दुश्मन साज़ा है: मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था और पूँजीपति वर्ग। चाहे अशिक्षा और बेरोज़गारी का सवाल हो, आर्थिक शोषण का सवाल हो, सामाजिक न्याय का सवाल हो, गरीबी और महँगाई का सवाल हो, जातिगत उत्पीड़न का सवाल हो, पितृसत्तात्मक उत्पीड़न का सवाल हो, या राष्ट्रीय दमन का प्रश्न हो, ये सभी कोई प्राकृतिक आपदाएँ नहीं हैं, बल्कि व्यवस्था द्वारा पैदा किये शोषण, उत्पीड़न और दमन के विभिन्न रूप हैं। ये आकस्मिक नहीं हैं, बल्कि व्यवस्थित रूप से हर क्षण मौजूदा मुनाफ़ा-केन्द्रित व्यवस्था द्वारा उत्पादित और

पुनरुत्पादित किये जाते हैं। यह व्यवस्था टिकी ही व्यापक मेहनतकश आबादी के श्रमशक्ति के शोषण पर है और इस शोषण को कायम रखने के लिए ही वह सामाजिक व राजनीतिक उत्पीड़न व दमन के भी तमाम रूपों को जन्म देती है।

इसलिए हमारा दूरगामी लक्ष्य है मुनाफ़ा-केन्द्रित पूँजीवादी व्यवस्था का ध्वंस और सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति पर आधारित समाजवादी व्यवस्था का निर्माण। लेकिन क्रान्ति की बुनियादी समस्याओं में से एक होता है सामान्य और विशिष्ट, दूरगामी और तात्कालिक में सही रिश्ता कायम करना। यह दूरगामी लक्ष्य भी तभी पूरा हो सकता है जबकि आज से ही व्यापक मेहनतकश अवाम के रोज़मर्रा के मुद्दों पर क्रान्तिकारी जनसंघर्षों को खड़ा किया जाये, मसलन शिक्षा का अधिकार, रोज़गार का अधिकार, भोजन का अधिकार, आवास का अधिकार, चिकित्सा का अधिकार, आदि।

हम छात्रों को भी कैम्पस के भीतर और कैम्पस के बाहर 'सबको समान और निशुल्क शिक्षा और सबको रोज़गार' के केन्द्रीय नारे के इर्द-गिर्द एक जुझारू छात्र-युवा आन्दोलन खड़ा करना होगा जो कि छात्रों को प्रभावित करने वाले अन्य सभी मुद्दों जैसे कि कैम्पस जनवाद, बढ़ती फ़ीसों व घटती सीटों का सवाल, हॉस्टल के अधिकार का सवाल, विश्वविद्यालय भर्तियों में जातिगत भेदभाव, कैम्पस के भीतर जातिगत व जेण्डगत उत्पीड़न के सवाल, धार्मिक अल्पसंख्यकों के उत्पीड़न के सवाल पर और छात्रों को स्कॉलरशिप, लाइब्रेरी, सांस्कृतिक-बौद्धिक केन्द्रों, आदि की सुविधा के प्रश्न पर भी छात्रों को गोलबन्द और संगठित करेगा। इन संघर्षों को आपस में जोड़ते हुए और इन सभी को मज़दूरों, ग़रीब किसानों, बेरोज़गारों, स्त्रियों, आम मेहनतकश दलितों और दमित राष्ट्रों के संघर्ष के साथ जोड़ते हुए ही समूचे आमूलगामी सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक परिवर्तन के संघर्ष को भी आगे बढ़ाया जा सकता है। 'दिशा छात्र संगठन' इस लक्ष्य के लिए सतत काम करने के लिए प्रतिबद्ध है।

हम उम्मीद करते हैं कि आने वाले समय में अपने इन उद्देश्यों को पूरा करने में हम कामयाब होंगे। इन संघर्षों में हमसफ़र बनने के लिए हम हर युवा, न्यायप्रिय, समानताप्रिय विद्रोही दिल को आमंत्रित करते हैं। दुनिया एक दहलीज़ पर है, मौजूदा व्यवस्था असमाधेय संकट के बोझ तले कराह रही है, नये के सृजन के लिए पुराने का ध्वंस आवश्यक होता है, लेकिन जब पुराना सड़ रहा हो और नया पैदा न हो पा रहा हो, तो ऐसा दौर सर्वाधिक पतनशील चीज़ों को जन्म देता है। जनता इतिहास बनाती है, नायक नहीं, और इसलिए नये का सृजन भी वही करती है। लेकिन इस प्रक्रिया में हमेशा उन छात्रों-युवाओं की एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है जिन्होंने अपने सपनों, अपनी आकांक्षाओं, और अपनी आशाओं को आम मेहनतकश जनता के दुख-दर्द और संघर्षों से जोड़ दिया है, जिन्होंने उस मेहनतकश जनता का पक्ष

चुना है जो सुई से लेकर जहाज़ तक सबकुछ बनाती है, लेकिन खुद गरीबी, बेरोज़गारी और मुफ़लिसी में जीने के लिए मजबूर कर दी गयी है। ऐसे युवाओं के जीवट, त्याग और बलिदान से इतिहास का चक्का आगे बढ़ता है। आज इतिहास उनसे बेटॉल्ट ब्रेष्ट के शब्दों में पूछ रहा है:

‘किस चीज़ का इन्तज़ार है, और कब तक? दुनिया को तुम्हारी ज़रूरत है!’

जहाँ स्पन्दित हो रहा है बसन्त
हिंस्र हेमन्त और सुनसान शिशिर में
वहाँ है तुम्हारी जगह
अगर तुम युवा हो!

जहाँ बज रही है भविष्य-सिम्फ़नी
जहाँ स्वप्न-खोजी यात्राएँ कर रहे हैं
जहाँ ढाली जा रही हैं आगत की साहसिक परियोजनाएँ,
स्मृतियाँ जहाँ ईंधन हैं,
लुहार की भाथी की कलेजे में भरी
बेचैन गर्म हवा जहाँ ज़िन्दगी को रफ़्तार दे रही है,
वहाँ तुम्हें होना है
अगर तुम युवा हो!
जहाँ दर-बदर हो रही है ज़िन्दगी,
जहाँ हत्या हो रही है जीवित शब्दों की
और आवाज़ों को कैद-तनहाई की
सज़ा सुनायी जा रही है,
जहाँ निर्वासित वनस्पतियाँ हैं
और काली तपती चट्टानें हैं,
वहाँ तुम्हारी प्रतीक्षा है
अगर तुम युवा हो!
जहाँ संकल्पों के बैरिकेड खड़े हो रहे हैं
जहाँ समझ की बंकरें खुद रही हैं
जहाँ चुनौतियों के परचम लहराये जा रहे हैं
वहाँ तुम्हारी तैनाती है
अगर तुम युवा हो।

— शशि प्रकाश

दिशा छात्र संगठन

मसौदा कार्यक्रम

1) दिशा छात्र संगठन का मानना है कि एक मानव-केन्द्रित, जनवादी, सेक्युलर, समानतामूलक और शारीरिक व मानसिक श्रम के अन्तर को खत्म करने वाली शिक्षा व्यवस्था का मुकम्मल तौर पर निर्माण मौजूदा मुनाफ़ा-केन्द्रित, मानवद्रोही, साम्प्रदायिक, जातिवादी, पितृसत्तात्मक, गैर-बराबरी से भरी हुई सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में नहीं हो सकता है। इसलिए छात्रों-युवाओं को भी मुकम्मल तौर पर ऐसी शिक्षा व्यवस्था तभी नसीब होगी, जबकि **समूचे मुनाफ़ा-केन्द्रित पूँजीवादी सामाजिक-आर्थिक ढाँचे को नष्ट कर एक ऐसी समाजवादी व्यवस्था का निर्माण किया जाये, जिसमें उत्पादन, राजकाज और समाज के पूरे ढाँचे पर उत्पादन करने वाले वर्गों का हक़ हो और फ़ैसला लेने की ताक़त सही मायने में उनके हाथों में हो।** ऐसी व्यवस्था के निर्माण हेतु हर क्रान्तिकारी जनसंघर्ष और क्रान्तिकारी जनान्दोलन में दिशा छात्र संगठन शिरक़त करेगा। हम शहीदे-आज़म भगतसिंह के सन्देश पर अमल करते हुए लड़ने के लिए पढ़ेंगे और पढ़ने के लिए लड़ेंगे और क्रान्ति का सन्देश लेकर ग़रीब मेहनतकश आबादी के बीच, गांवों से लेकर शहरों की झुगियों तक जायेंगे और समूचे समाज के क्रान्तिकारी आमूलगामी परिवर्तन में अपनी भूमिका निभायेंगे।

2) लेकिन इस लड़ाई की शुरुआत हमें वहाँ से करनी होगी, जहाँ हम आज हैं। दिशा छात्र संगठन का मानना है कि स्कूल से लेकर उच्चतर शिक्षा के स्तर तक सभी के लिए **समान और निशुल्क शिक्षा** के हक़ के लिए आज से ही संघर्ष खड़ा करना होगा। हमारा मानना है कि सभी के लिए समान और निशुल्क शिक्षा हर नागरिक का मूलभूत अधिकार है और इस अधिकार के लिए एक व्यापक छात्र-युवा आन्दोलन खड़ा किया जाना चाहिए। यह दिशा छात्र संगठन के कार्यक्रम का पहला केन्द्रीय

नारा है। इसी के अंग के तौर पर हम शिक्षा में निजीकरण पूर्ण रूप से समाप्त करने और एकसमान स्कूल व्यवस्था की मांग को भी उठाते हैं। साथ ही, हम भारतीय पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा किये गये उस पुराने वायदे को भी लागू करने की मांग करते हैं जिसके अनुसार सकल घरेलू उत्पाद का कम-से-कम 6 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च किया जाना चाहिए। इसके अलावा, तात्कालिक तौर पर हम यह मांग करते हैं कि सरकार शिक्षा में की जा रही फण्ड की कटौती, विनिवेश और वजीफ़ों को बन्द करने की नीतियों को तत्काल बन्द करे।

3) **हमारा दूसरा केन्द्रीय नारा है: रोजगार गारण्टी का अधिकार हरेक नागरिक का जन्मसिद्ध अधिकार है।** काम के हक के बिना जीने का हक बेमानी हो जाता है। काम के हक को भी भारत के पूँजीवादी संविधान में नीति-निर्देशक सिद्धान्तों में रखकर भारत के शासक वर्ग ने अपना पिण्ड छुड़ा लिया था। लेकिन हम इस धोखे को बर्दाश्त नहीं करेंगे। हमारा मानना है कि हरेक नागरिक को पक्के रोजगार की गारण्टी या जीवनयापन योग्य बेरोजगारी भत्ता देने वाला **‘भगतसिंह राष्ट्रीय रोजगार गारण्टी क्लानून’** पारित करवाने के लिए एक देशव्यापी छात्र-युवा आन्दोलन खड़ा करना आज की एक बुनियादी ज़रूरत है।

4) विश्वविद्यालय कैम्पस के भीतर जो भी जनवादी स्पेस था उसको समाप्त करने की साजिशें भारत का शासक वर्ग लम्बे समय से करता रहा है और फ़ासीवादी सरकार के दौर में ये साजिशें अभूतपूर्व गति से आगे बढ़ रही हैं। खुद ‘मनी पावर-मसल पावर’ की गन्दी राजनीति करने वाले अपने छात्र फ़ण्टों को तो सभी पूँजीवादी चुनावी दल कैम्पस में गुण्डागर्दी और पूँजीवादी राजनीति करने का पूरा खुला हाथ देते हैं, लेकिन सही मायने में छात्रों की प्रगतिशील राजनीति करने के हर प्रयास को रोकने की कोशिश करते हैं। ये छात्रों को “राजनीति न करने” की हिदायत देते हैं, जबकि खुद पूरे कैम्पस को गुण्डागर्दी और सांसद-विधायक बनने के प्रशिक्षण केन्द्र में तब्दील कर देते हैं। इसके अलावा, कैम्पस के भीतर मौजूद सभी जनवादी संस्थाओं, मंचों व स्थानों को समाप्त किया जा रहा है ताकि छात्र समाज और कैम्पस के जीवन्त मुद्दों पर बातचीत, बहस-मुबाहिसा ही न कर सकें और इस प्रकार गोलबन्द और संगठित ही न हो सकें। **हम कैम्पस के भीतर छात्रों के लिए स्वतंत्रता और जनवाद के हक की लड़ाई को आज के समय में अपना तीसरा केन्द्रीय नारा मानते हैं।** इसके तहत हर कैम्पस में छात्रसंघ का अधिकार, कैम्पस में जनवादी संस्थाओं, मंचों व स्थानों के अधिकार और कैम्पस के भीतर पुलिस व निजी सिक्योरिटी गार्डों की व्यवस्था के पूर्ण खात्मे की मांगें हमारी प्रमुख मांगें हैं।

5) आज समूची स्कूल व्यवस्था व उच्चतर शिक्षा की व्यवस्था के पूरे संचालन,

प्रबन्धन इत्यादि में जनता का कोई हस्तक्षेप या नियंत्रण नहीं है। ऐसे में, शिक्षा तंत्र में पाठ्यक्रम से लेकर, शिक्षकों की भर्ती, उनके सेवा क्रार, शैक्षणिक संस्थानों के संचालन आदि पर आम जनता का कोई जनवादी नियंत्रण नहीं है। ऐसे में, हम मांग करते हैं कि स्कूलों को संचालित व प्रबन्धित करने के लिए शिक्षकों, कर्मचारियों, अभिभावकों व नागरिक समाज के प्रतिनिधियों से बने जनवादी कमेटियों का गठन किया जाना चाहिए। साथ ही, विश्वविद्यालय के हरेक पहलू के प्रबन्धन और संचालन के लिए शिक्षकों, छात्रों, कर्मचारियों व नागरिक समाज के प्रतिनिधियों की साझा कमेटियाँ गठित की जानी चाहिए। **ऐसे नियंत्रण के बिना शिक्षा व्यवस्था पूरी तरह से शासक वर्गों के नियंत्रण में होगी और वह उसका अपने उपकरण के तौर पर इस्तेमाल करता रहेगा।**

6) स्कूलों और उच्चतर शिक्षा की सभी संस्थाओं से **ठेका प्रथा पूर्ण रूप से समाप्त** की जानी चाहिए। सभी शिक्षकों और कर्मचारियों की पक्की भर्ती होनी चाहिए और उन्हें स्थायी रोजगार दिया जाना चाहिए। शिक्षा के संस्थानों में ठेका प्रथा जैसी घृणास्पद प्रथा का मौजूद होना शर्मनाक है। कोई भी शिक्षक कभी मानसिक शान्ति से अध्यापन का कार्य नहीं कर सकता है, यदि उसके सिर पर छंटनी की तलवार हमेशा लटकती रहे। इसलिए शिक्षा के क्षेत्र से अनौपचारिकीकरण को पूर्ण रूप से समाप्त किया जाना चाहिए।

7) इसके अलावा, छात्रों के बीच **शिक्षा का अनौपचारिकीकरण भी बन्द किया जाना चाहिए।** मौजूदा व्यवस्था तेजी से कैम्पस की नियमित शिक्षा को अमीरों का विशेषाधिकार बना रही है जबकि आम घरों से आने वाले छात्रों को “पत्राचार” या “दूरस्थ” शिक्षा लेने की हिदायत दे रही है। बताने की आवश्यकता नहीं है कि पूँजीवादी व्यवस्था चाहती है कि ये आम छात्र कैम्पस में एकजुट, गोलबन्द और संगठित न हों और शिक्षा पूरी करने से पहले से ही पूँजीपतियों के लिए अनौपचारिक-असंगठित क्षेत्र में एक सस्ती श्रमशक्ति का काम करें। यह छात्रों के विराजनीतिकरण को बढ़ावा देने के लिए उठाया गया क़दम है, जिसका हम पुरजोर विरोध करते हैं। उच्चतर शिक्षा का यह अनौपचारिकीकरण तत्काल रोका जाना चाहिए।

8) हमारा मानना है कि सभी नागरिकों को शुरू से ही **मानसिक व शारीरिक श्रम की शिक्षा** दी जानी चाहिए। यानी स्कूली स्तर से ही सभी नागरिकों के लिए उत्पादक श्रम का शिक्षण-प्रशिक्षण व तकनीकी शिक्षा अनिवार्य बनायी जानी चाहिए ताकि समाज में शारीरिक श्रम और मानसिक श्रम के बीच के विभेद को ख़त्म करने की दिशा में क़दम बढ़ाया जा सके और शिक्षा वास्तव में एक सम्पूर्ण मानव का निर्माण कर सके, न कि आधे-अधूरे इन्सानों का।

9) हर छात्र व छात्रा को अपनी पसन्द की भाषा में पढ़ने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए चाहे वह देश के किसी भी विश्वविद्यालय कैम्पस में पढ़ते हों। हम कहीं भी हिन्दी, अंग्रेज़ी या किसी भी भाषा को थोपे जाने का पुरजोर विरोध करते हैं और साथ ही इसकी प्रतिक्रिया में पैदा हुए भाषाई अस्मितावाद और कट्टरतावाद का भी विरोध करते हैं।

10) हम मानते हैं कि विश्वविद्यालय की संस्था को पूर्ण रूप से सच्चे मायने में **सेक्युलर संस्था** बनाने के लिए समझौताविहीन संघर्ष करने की आवश्यकता है। कहने के लिए भारत की राज्यसत्ता और संविधान अपने आपको 'सेक्युलर' कहती है लेकिन इसके सेक्युलरिज़्म का मॉडल 'सर्वधर्म समभाव' का मॉडल है, जिसका वास्तविक अर्थ में सेक्युलरिज़्म से कोई लेना-देना नहीं है। वास्तव में, इस प्रकार का तर्क बहुसंख्यवादी साम्प्रदायिकता को फलने-फूलने का अवसर देता है। मिसाल के तौर पर, स्कूलों में धार्मिक प्रार्थनाओं, धार्मिक त्योहारों व धार्मिक आयोजनों को एक तथाकथित सेक्युलर देश में कैसे वाजिब ठहराया जा सकता है? सेक्युलरिज़्म का सही मायने में अर्थ है धर्म का सामाजिक और राजनीतिक जीवन से पूर्ण विलगाव जिसमें कि विश्वविद्यालय व शिक्षा के समूचे ढाँचे का धर्म से पूर्ण विलगाव स्वाभाविक रूप से शामिल है। इसका अर्थ है कि कोई भी धर्म मानना या कोई भी धर्म न मानना पूरी तरह से हर नागरिक का निजी मसला है और इसका राजनीतिक व सामाजिक जीवन से कोई लेना-देना नहीं होना चाहिए। हम ऐसे वास्तविक सेक्युलर सामाजिक व राजकीय व्यवस्था के लिए लड़ने के लिए वचनबद्ध हैं।

इन शुद्धतः शिक्षा व रोज़गार सम्बन्धी मांगों के अतिरिक्त छात्र-युवा आन्दोलन उन सभी मांगों को उठाता है जो कि समूची मेहनतकश जनता की मांगें बनती हैं। एक क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलन की पहचान ही इस बात से होती है। दिशा छात्र संगठन शिक्षा व रोज़गार सम्बन्धी उपरोक्त मांगों के अलावा कैम्पस व समाज दोनों को ही प्रभावित करने वाली निम्न मांगों के लिए संघर्ष को भी अपने कार्यक्रम का अविभाज्य हिस्सा मानता है।

11) **भोजन का अधिकार** देश के हर नागरिक का बुनियादी अधिकार होना चाहिए। इसके बिना जीने के अधिकार की बात करना बेमानी है। देश में भुखमरी और कुपोषण की जो स्थिति है वह भयंकर है। वहीं दूसरी ओर सरकारी और निजी गोदामों में अनाज सड़ रहा है। ऐसे में सरकार को सार्वजनिक वितरण प्रणाली को चाक-चौबन्द कर यह सुनिश्चित करना चाहिए कि एक भी नागरिक भूखा नहीं सोए और न कुपोषण का शिकार हो। यह एक इन्सान के तौर पर हमारा प्राकृतिक और जन्मसिद्ध अधिकार है। 'दिशा' इस अधिकार के प्रति संघर्ष में भागीदारी के लिए वचनबद्ध है।

12) हमारा मानना है कि **समान और निशुल्क चिकित्सा** देश के हर नागरिक का जन्मसिद्ध अधिकार है। जनस्वास्थ्य के अधिकार के लिए हम स्वास्थ्य व चिकित्सा क्षेत्र में निजीकरण को पूर्ण रूप से समाप्त करने के लिए लड़ने को वचनबद्ध हैं। साथ ही मेडिकल शिक्षा के पूरे तंत्र का भी पुनर्गठन होना चाहिए और निजी मेडिकल कॉलेजों का राष्ट्रीकरण किया जाना चाहिए। इन निजी मेडिकल कॉलेजों में शुरू से ही डॉक्टर जैसे मानवीय पेशे के बाज़ारीकरण की नींव डाल देते हैं। जब तक व्यावसायिक मेडिकल शिक्षा का ढाँचा होगा, तब तक गुणवत्ता वाली समान एवं निशुल्क चिकित्सा एक बुनियादी जन-अधिकार नहीं बन सकती और धनाढ्य व उच्च मध्य वर्गों का विशेषाधिकार बनी रहेगी। हर छात्र देश का नागरिक भी होता है और देश की जनता की तमाम समस्याओं से वह असम्पृक्त नहीं रह सकता। हमारे देश में करोड़ों लोग गुणवत्ता वाली समान एवं निशुल्क चिकित्सा के अधिकार से वंचित हैं। हम मानते हैं कि यह हम छात्रों-युवाओं का भी मुद्दा है और इस हक के लिए लड़ने को हम अपना कर्तव्य मानते हैं।

13) हरेक नागरिक को अपने सिर पर एक पक्की छत, यानी **आवास का अधिकार** मिलना चाहिए। सार्वभौमिक राजकीय आवास व्यवस्था हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। बेघर आबादी और झुग्गियों में रहने वाली आबादी भारत में 36 करोड़ से भी ज्यादा है। ये वह आबादी है जिसकी हाड़तोड़ मेहनत के बूते ही हम छात्र शिक्षा के परिसरों तक पहुँच पाते हैं, यहाँ तक कि इन परिसरों को भी उन्होंने ही बनाया है। उनके इस हक के लिए लड़ना हम उसूलन अपनी ज़िम्मेदारी मानते हैं।

14) इसी प्रकार जनता के जीवन की रोज़मर्रा की ज़रूरतों जैसे कि साफ़ पीने का पानी, साफ़-सफ़ाई, निशुल्क जन परिवहन, इत्यादि के अधिकारों के लिए संघर्ष को भी हम छात्र-युवा आन्दोलन से अलग चीज़ नहीं मानते हैं, बल्कि उसके एजेण्डा का अंग मानते हैं।

15) हम कैम्पस के भीतर और बाहर **जातिवाद और ब्राह्मणवाद की विचारधारा के विरुद्ध संघर्ष** को अहम मानते हैं। लेकिन साथ ही हम आरक्षण की राजनीति की असलियत को समझते हैं और उसके पक्ष या विपक्ष में खड़े होने की छद्म बाइनरी को अस्वीकार करते हैं। हम पहले से प्राप्त आरक्षण को छीने जाने की सवर्णवादी साजिश का विरोध करते हैं और साथ ही हम विश्वविद्यालय और अन्य शैक्षणिक संस्थानों में आरक्षित सीटें न भरे जाने के विरुद्ध लड़ने को अपना कार्यभार मानते हैं। यह एक जनवादी अधिकार के लिए और जातिवादी मानसिकता से प्रेरित लोगों द्वारा किये जाने वाले भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष है। लेकिन नयी-नयी जातिगत अस्मिताओं को निर्मित कर जनता को आपस में आरक्षण के नाम पर लड़ाने को हम

‘बाँटो और राज करो’ की शासक वर्ग की नीति का अंग मानते हैं और उसका पुरजोर विरोध करते हैं। सभी को निशुल्क व समान शिक्षा और रोज़गार का संघर्ष ही सामान्य दूरगामी राजनीतिक नारा हो सकता है जो कि व्यापक दलित मेहनतकश आबादी को भी शिक्षा और रोज़गार के हक़ के लिए गोलबन्द कर सकता है, न कि आरक्षण का नारा।

16) हम स्त्री-पुरुष समानता के दृढ़ पक्षधर हैं और मानते हैं कि पूँजीवादी व्यवस्था के लिए पितृसत्ता एक अहम सामाजिक उत्पीड़न का रूप है जिसका वह कुशलता से इस्तेमाल करती है। पितृसत्ता और लैंगिक व जेण्डर असमानता के मूल्य-मान्यताएँ कैम्पस और समाज के अन्दर स्त्रियों के उत्पीड़न और उनके प्रति असमानता को जन्म देते हैं। साथ ही हम, वैकल्पिक लैंगिक/जेण्डर पहचान रखने वाले व्यक्तियों, समलैंगिकों, ट्रांससेक्सुअल, ट्रांसजेण्डर लोगों के जनवादी व नागरिक अधिकारों के हनन का विरोध करते हैं और मानते हैं कि किसी भी नागरिक की वैयक्तिक जेण्डर पहचान या चयन में हस्तक्षेप करने का किसी भी राज्यसत्ता या पार्टी को हक़ नहीं है और यह पूरी तरह से हरेक नागरिक का व्यक्तिगत मसला है। हम पितृसत्ता और स्त्री-पुरुष असमानता के विरुद्ध संघर्ष के लिए प्रतिबद्ध हैं और इसे पूँजीवाद-विरोधी संघर्ष का एक अविभाज्य अंग मानते हैं। कैम्पस के भीतर भी हॉस्टलों व कॉलेजों के नियम-कायदों में स्त्री छात्रों के प्रति की जाने वाली असमानता के विरुद्ध संघर्ष को हम बेहद ज़रूरी संघर्ष मानते हैं। हम शुरुआत से लेकर सहशिक्षा की व्यवस्था को लागू करने के लिए वचनबद्ध हैं। साथ ही, हम कैम्पस के अन्दर और बाहर ‘समान काम के लिए समन वेतन’ के बुनियादी हक़ को लागू करवाने के लिए संघर्ष के लिए प्रतिबद्ध हैं। विश्वविद्यालय में लैंगिक उत्पीड़न के मसलों की निष्पक्ष जांच के लिए लैंगिक उत्पीड़न विरोधी कमेटियाँ बनायी जानी चाहिए, जिसमें छात्रों, शिक्षकों व कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व हो।

17) दिशा छात्र संगठन सभी राष्ट्रों के आत्मनिर्णय के अधिकार का बिना शर्त समर्थन करता है और कश्मीर और उत्तर-पूर्व के राज्यों में भारतीय राज्यसत्ता द्वारा किये जा रहे बर्बर राष्ट्रीय दमन का पुरजोर विरोध करता है। जो देश अन्य राष्ट्रों को दबाते हैं, उन देशों के मज़दूर व छात्र-युवा भी अपनी राज्यसत्ता के दमन के शिकार होने को अभिशप्त होते हैं। इसलिए हम सभी दमित राष्ट्रों के संघर्ष का समर्थन करते हैं। हम स्वेच्छा से बने अधिकतम सम्भव बड़े राज्य के पक्ष में हैं, लेकिन दमन के आधार पर बने किसी राज्य के पक्ष में कोई भी इंसोफ़्रपसन्द और तरक्कीपसन्द नौजवान नहीं हो सकता है। साथ ही, हम हर प्रकार और रूप में राष्ट्रवाद की विचारधारा का विरोध करते हैं।

18) हम देश में किसी भी धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय के उत्पीड़न का **पुरजोर विरोध** करते हैं। आज विशेष तौर पर मुसलमानों की स्थिति बहुत खराब है, क्योंकि भारत के साम्प्रदायिक फ़ासीवादी इस समय सत्ता में हैं और उन्होंने मुसलमानों को ही मुख्य तौर पर एक नक़ली दुश्मन के तौर पर निशाना बनाया है। लेकिन साथ ही ईसाइयों पर भी आए दिन साम्प्रदायिक फ़ासीवादी हमले होते रहते हैं। ये घटनाएँ इन उत्पीड़ित धार्मिक समुदायों में भी प्रतिक्रियावादी कट्टरपन्थ को जन्म देती रहती हैं और ये विभिन्न कट्टरपन्थ एक दूसरे फलने-फूलने के लिए खाद-पानी देते रहते हैं। साथ ही, किसी धर्म को न मानने वाले नास्तिकों, तर्कवादियों पर हमलों का भी हम पुरजोर शब्दों में विरोध करते हैं। हम मानते हैं कि साम्प्रदायिक फ़ासीवाद और अन्य धार्मिक कट्टरपन्थों के खिलाफ़ जनता को जागृत, गोलबन्द और संगठित करना भी छात्र-युवा आन्दोलन की जिम्मेदारी है।

19) दिशा छात्र संगठन जनता के जनवादी व नागरिक अधिकारों के हनन और राजकीय दमन और हिंसा के हर रूप के खिलाफ़ है। हमारा मानना है कि इन अधिकारों के लिए संघर्ष अविभाज्य रूप से छात्र-युवा आन्दोलन से जुड़ा हुआ है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि इनके लिए संघर्ष मज़दूर आन्दोलन, जाति-विरोधी आन्दोलन, साम्प्रदायिक फ़ासीवाद-विरोधी आन्दोलन और स्त्री आन्दोलन से भी जुड़ा हुआ है। हम सभी दमनकारी काले क्रान्तियों को रद्द करने के लिए वचनबद्ध हैं, जिनमें से कुछ औपनिवेशिक काल में अंग्रेज़ों द्वारा भारतीय जनता के दमन के लिए बनाये गये थे। साथ ही, हम जनता के जनवादी अधिकारों के दमन के लिए विशेष तौर पर बनाये गये अर्द्धसैनिक बलों को भंग किये जाने के लिए संघर्ष को भी अनिवार्य मानते हैं।

20) आज के दौर में पर्यावरणीय तबाही पूरी दुनिया में अभूतपूर्व रूप से हो रही है। पूँजीवादी व्यवस्था मुनाफे की हवस में पृथ्वी पर इन्सानों के जीवन की स्थितियों को ही नष्ट कर रही है। हम इस मानवद्रोही व्यवस्था की एक और सदी भी झेल पाने की स्थिति में नहीं लग रहे हैं। **ऐसे में पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष का एक अहम हिस्सा पर्यावरणीय विनाश के विरुद्ध संघर्ष भी बन जाता है।** व्यवस्था इस पर्यावरण के विनाश के लिए जनता को ही जिम्मेदार ठहराती है और इसे बचाने की जिम्मेदारी जनता पर डाल देती है। इस साजिश को बेनकाब करना और पर्यावरणीय विनाश में इस मुनाफ़ाकेन्द्रित पूँजीवादी व्यवस्था की आपराधिक भूमिका को जनता के सामने लाना भी हम एक अहम कार्यभार मानते हैं। युवाओं के बीच पर्यावरणीय तबाही के प्रति जागरूकता बढ़ रही है, लेकिन उन्हें इसके लिए जिम्मेदार दुश्मन की सही पहचान करने की ज़रूरत है।

21) पूँजीवादी व्यवस्था हमेशा ही समाज में रूढ़ियों, अन्धविश्वासों और दकियानूसी विचारों का सहारा लेती है ताकि जनता और आम छात्र-युवा आबादी को अज्ञान में कैद करके रखे। 'दिशा' का मानना है कि **समाज में सतत् तार्किकता और वैज्ञानिक सोच का प्रचार-प्रचार** छात्र-युवा आन्दोलन का एक कार्यभार बनता है और हम छात्रों को उत्साह के साथ इसे अपने हाथ में लेना चाहिए।

22) एक तरक्कीपसन्द नौजवान के लिए '**जनता की सेवा करो**' का नारा एक बेहद ज़रूरी नारा है। कोई नौजवान क्रान्तिकारी है या नहीं उसकी पहचान इस बात से ही होती है कि वह जनता के दुख-दर्द से खुद को जोड़ पाता है या नहीं और जनता की सेवा करने में यत्नीन करता है या नहीं। हमारा मानना है कि छात्रों को आम मेहनतकश गरीब आबादी के बीच जाना चाहिए और उनके बीच सुधारवादी तरीके से नहीं बल्कि **क्रान्तिकारी तरीके से सुधार कार्यों** को अंजाम देना चाहिए। क्रान्तिकारी तरीके से जनता के बीच सुधार कार्यों का अर्थ है कि हम लोगों में यह भ्रम नहीं पैदा करते कि समाज में कुछ अच्छे दिल के लोग हैं, जिनके रहमो-करम पर गरीबों का भी कुछ भला हो जायेगा। नहीं! हम इन सुधार कार्यों को भी अंजाम देते हुए शिक्षा, रोजगार, चिकित्सा, आवास जैसे सभी अधिकारों के लिए समूची पूँजीवादी व्यवस्था को कठघरे में खड़ा करेंगे, उसके खिलाफ़ लोगों को गोलबन्द और संगठित करेंगे।

23) हम **सभी पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियों की असलियत को जनता के सामने लाना**, उनकी फण्डिंग को उजागर करना, उनके असली आकाओं को जनता के सामने बेनक्काब करना और उनके पूरे चरित्र को अनावृत्त करने को एक क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलन के कार्यभारों का अंग मानते हैं। 'दिशा' हर सम्भव अवसर पर इस कार्यभार को पूरा करने के लिए वचनबद्ध है।

24) हम एन.जी.ओ. राजनीति को बेहद खतरनाक साम्राज्यवादी साजिश मानते हैं। इनका कार्य है पूँजीवाद के अपराधों पर पर्दा डालना, सुधारवाद के जरिये जनता को भिक्षावृत्ति का शिकार बनाना, अस्मितावादी राजनीति को बढ़ावा देना, परिवर्तन की चाहत रखने वाले नौजवानों को 'वेतनभोगी क्रान्तिकारिता' के भ्रम में उलझाना और क्रान्तिकारी भर्ती केन्द्रों पर सेंध लगाना। हर मोर्चे और हर मौके पर इस **एन.जी.ओ. राजनीति को बेपर्दा करना** छात्र-युवा आन्दोलन का एक अहम कार्यभार है क्योंकि कैम्पसों में भी इनकी घुसपैठ बढ़ती जा रही है।

25) हम देश में कहीं भी **पूँजीवादी व्यवस्था की लूट, शोषण और दमन के विरुद्ध होने वाले हर जनसंघर्ष का समर्थन** करते हैं और इसे छात्र-युवा आन्दोलन का एक ज़रूरी कार्यभार मानते हैं, चाहे वह निजीकरण, छंटनी व तालाबन्दी, श्रम कानूनों में बदलाव और शोषण के खिलाफ़ चल रहे मजदूरों व कर्मचारियों के संघर्ष

हों, उड़ीसा व मध्य भारत में विस्थापन और बर्बर दमन के विरुद्ध चल रहे मेहनतकश आदिवासी जनता के संघर्ष हों, जातिगत उत्पीड़न के विरुद्ध चल रहे मेहनतकश दलितों के संघर्ष हों, सी.ए.ए.-एन.आर.सी. जैसे साम्प्रदायिक फ़ासीवादी क़ानूनों के खिलाफ़ चल रहे संघर्ष हों या फिर स्त्री-विरोधी अपराधों के खिलाफ़ चल रहे स्त्रियों के संघर्ष हों।

26) हम दुनिया भर में आम मेहनतकश जनता, दमित राष्ट्रों और नस्लों के साम्राज्यवाद व पूँजीवाद के विरुद्ध संघर्ष का पुरज़ोर समर्थन करते हैं। हम विशेष तौर पर ज़ायनवाद के खिलाफ़ फिलिस्तीनी जनता के वीरतापूर्ण संघर्ष की हिमायत करते हैं और अपने देश में भी इज़रायल के विरुद्ध अकादमिक बहिष्कार व 'बॉयकॉट-डाइवैस्टमेण्ट-सैंकशंस' आन्दोलन में शिरक़त करने को अपना कार्यभार मानते हैं।

दिशा छात्र संगठन

मसौदा संविधान

अनुच्छेद-1

संगठन का नाम

संगठन का नाम हिन्दी में 'दिशा छात्र संगठन', पंजाबी में 'दिशा विद्यार्थी जत्थेबन्दी', मराठी में 'दिशा विद्यार्थी संघटना', मलयालम में 'दिशा विद्यार्थी संघटना' व अंग्रेजी में 'Disha Students Organization' होगा। हिन्दी समेत सभी भारतीय भाषाओं में संक्षिप्त नाम 'दिशा' और अंग्रेजी में संक्षिप्त नाम 'Disha' होगा। 'दिशा' नाम को कायम रखते हुए अन्य भाषाभाषी क्षेत्र में संगठन के विस्तार के साथ संगठन के नाम का अनुवाद किया जायेगा। यह एक संघीय ढाँचे का संगठन होगा।

अनुच्छेद-2

झण्डा व प्रतीक

संगठन के झण्डे का अनुपात 3:2 होगा। यह ऊर्ध्वाधर रूप से नीले और लाल रंग में विभाजित होगा। नीले रंग वाला हिस्सा 1/3 होगा और लाल रंग वाला हिस्सा 2/3 होगा। झण्डे के लाल रंग वाले हिस्से के बीच पीले रंग की कलम पकड़े मुट्टी होगी जिसके ऊपर पीले रंग के तीन पंचकोणीय सितारे होंगे। इसके नीचे 'दिशा' या 'Disha' लिखा होगा।

नीला रंग छात्रों-युवाओं की ऊर्जा, साहस और न्यायप्रियता का प्रतीक है। लाल रंग छात्रों-युवाओं के क्रान्तिकारी संघर्षों की गर्मी, जुझारूपन और कुर्बानी का प्रतीक है। तीन सितारे छात्रों-युवाओं की वैचारिक तीक्ष्णता, फौलादी एकजुटता और क्रान्तिकारी जनपक्षधरता का प्रतीक हैं। ये तीन सितारे पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध सर्वहारा वर्ग, अर्द्धसर्वहारा वर्ग और मध्यवर्ग के नौजवानों की लामबन्दी का भी प्रतीक हैं। सितारों के पाँच कोण पाँचों महाद्वीपों के क्रान्तिकारी छात्रों-युवाओं के

संघर्षों की एकजुटता का प्रतीक हैं। तनी हुई मुट्टी और कलम नौजवानों के क्रान्तिकारी विचारों और अडिग संकल्प का प्रतीक है।

अनुच्छेद-3

लक्ष्य और उद्देश्य

i) मौजूदा मुनाफ़ा-केन्द्रित पूँजीवादी व्यवस्था और साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकना और एक मानव-केन्द्रित समाजवादी व्यवस्था का निर्माण करना और इसके लिए व्यापक क्रान्तिकारी जनान्दोलन में शिरकत के लिए आम छात्र-छात्राओं और युवाओं को गोलबन्द और संगठित करना हमारा दूरगामी लक्ष्य है।

ii) 'सभी के लिए समान और निशुल्क शिक्षा और सभी के लिए रोज़गार' के केन्द्रीय नारे के तहत व्यापक आम छात्र-युवा आबादी को गोलबन्द और संगठित करना हमारा केन्द्रीय तात्कालिक कार्यभार है। इसी के अंग के तौर पर शिक्षा क्षेत्र में निजीकरण और व्यावसायीकरण, सीटों को घटाने और सीटों को बढ़ाने का विरोध करना, एकसमान स्कूल व्यवस्था की मांग करना और साथ ही 'भगत सिंह राष्ट्रीय रोज़गार गारण्टी योजना' को लागू करवाने के लिए संघर्ष करना।

iii) कैम्पस के भीतर जनवादी अधिकारों व स्पेस के लिए संघर्ष करना। इसके अंग के तौर पर एक जनवादी छात्रसंघ के लिए लड़ना, कैम्पस में जनवादी संस्थाओं, मंचों व स्थानों के लिए संघर्ष करना और साथ ही कैम्पस के भीतर से पुलिस उपस्थिति व निजी सिक्योरिटी गार्डों की व्यवस्था को समाप्त करना।

iv) समूची शिक्षा व्यवस्था को जनता के जनवादी नियंत्रण के मातहत लाने के लिए लड़ना। इसके अंग के तौर पर विश्वविद्यालय के समूचे प्रबंधन व संचालन तथा पाठ्यक्रम निर्धारण को छात्रों, शिक्षकों, कर्मचारियों व नागरिक समाज के प्रतिनिधियों की चुनी गयी कमेटियों के नियंत्रण में लाना और स्कूलों के समूचे प्रबंधन व संचालन व पाठ्यक्रम निर्धारण को अभिभावकों, शिक्षकों व नागरिक समाज के प्रतिनिधियों की चुनी गयी कमेटियों के नियंत्रण में लाना शामिल है।

v) शिक्षा क्षेत्र में हर प्रकार के अनौपचारिकीकरण को समाप्त करना चाहे वह अनियमित शिक्षकों व कर्मचारियों की भर्ती के रूप में हो या फिर छात्रों की शिक्षा के पत्राचारीकरण के रूप में।

vi) शिक्षा व्यवस्था में आरम्भ से ही सभी के लिए उत्पादक श्रम के शिक्षण व तकनीकी प्रशिक्षण को अनिवार्य बनाना ताकि समाज में शारीरिक व मानसिक श्रम के बीच अन्तर को समाप्त किया जा सके और शिक्षा व्यवस्था को एक सम्पूर्ण मनुष्य के निर्माण योग्य बनाया जा सके।

vii) देश के हरेक नागरिक को, चाहे वह जहाँ भी रहता हो, अपनी पसन्द की भाषा में शिक्षण का पूरा अधिकार मिलना चाहिए और कहीं भी किसी भाषा को थोपा नहीं जाना चाहिए।

viii) देश की राज्य व्यवस्था और समूची शिक्षा व्यवस्था को सही मायने में सेक्युलर बनाना। 'सर्वधर्म समभाव' के भ्रामक सिद्धान्त की आड़ में साम्प्रदायिक बहुसंख्यवाद को फलने-फूलने का खाद-पानी मिलता है। सेक्युलरिज्म का अर्थ है राजनीतिक व सामाजिक जीवन से धर्म का पूर्ण विलगाव और धर्म को पूर्ण रूप से व्यक्ति का निजी मसला बनाया जाना।

ix) कैम्पस के भीतर और समाज में जातिवाद व ब्राह्मणवाद और पितृसत्ता की विचारधारा के विरुद्ध और साथ ही सभी उत्पीड़ित धार्मिक अल्पसंख्यकों के दमन के विरुद्ध सतत् समझौताविहीन संघर्ष करना। इसके अंग के तौर पर नयी-नयी अस्मिताएँ पैदा कर आरक्षण के नाम पर आम छात्रों-युवाओं को लड़ाने के विरुद्ध, पहले से मौजूद आरक्षण को खत्म करने की सवर्णवादी साजिशों के विरुद्ध और आरक्षित सीटों को न भरने के भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष शामिल है; साथ ही, इसमें सभी स्त्रियों के लिए शुरू से सहशिक्षा के अधिकार तथा समान काम के लिए समान वेतन के अधिकार के लिए संघर्ष, कैम्पसों के भीतर स्त्रियों के समान अधिकारों के लिए संघर्ष और स्त्री-विरोधी अपराधों के विरुद्ध संघर्ष शामिल है।

x) हरेक नागरिक के लिए भोजन का अधिकार, समान एवं निशुल्क सार्वजनिक चिकित्सा व्यवस्था का अधिकार, तथा आवास का अधिकार बुनियादी अधिकार हैं। इनके बिना जीने के अधिकार का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। इनके लिए राज्यसत्ता से लगातार संघर्ष करना हमारे लक्ष्यों में से एक है।

xi) हर राष्ट्र के आत्मनिर्णय के अधिकार का समर्थन करना, दमित राष्ट्रों व राष्ट्रीयताओं के उत्पीड़न व दमन का पुरजोर विरोध करना। हम स्वेच्छा व जनवादी तरीके से बने अधिकतम सम्भव विशाल राज्य के पक्षधर हैं, लेकिन ज़ोर-ज़बर्दस्ती से बनाये गये किसी भी राज्य के पक्षधर नहीं हैं।

xii) हम हर रूप में राजकीय दमन के विरुद्ध लड़ने को वचनबद्ध हैं। इसके तहत तमाम काले क्लानूनों को रद्द करने, विशेष तौर पर जनता के दमन के लिए बनाये गये तमाम विशेष अर्द्धसैनिक बलों को समाप्त करना इस संघर्ष का अंग है।

xiii) पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा निर्बाध रूप से पर्यावरण के विनाश के खिलाफ़ संघर्ष करना और इसकी सच्चाई को आम जनता के सामने उजागर करना।

xiv) छात्रों-युवाओं के बीच और समूचे आम मेहनतकश जनसमुदाय के बीच तार्किकता, वैज्ञानिकता और प्रबोधन के विचारों का प्रचार-प्रसार करना। इसके तहत

रूढ़ियों, अन्धविश्वासों और दकियानूसी विचारों के खिलाफ संघर्ष करना शामिल है, जिनका इस्तेमाल शोषक शासक वर्ग करते हैं।

xv) एन.जी.ओ. के साम्राज्यवादी षड्यंत्र का विरोध करना और उसे बेनकाब करना, जो जनता को भिक्षावृत्ति का शिकार बनाता है, उसके क्रान्तिकारी असन्तोष पर ठण्डे पानी का छिड़काव करता है, पूँजीवाद के अपराधों को छिपाता है, परिवर्तनकामी छात्रों को 'वेतनभोगी क्रान्तिकारिता' के भ्रामक सपने दिखाता है और क्रान्तिकारी भर्ती केन्द्रों पर सेंध लगाता है।

xvi) सभी पूँजीवादी चुनावबाज़ दलों की असलियत को, उनके वर्ग चरित्र को, उनकी फण्डिंग के स्रोतों को जनता के सामने उजागर करना।

xvii) 'जनता की सेवा करो' के क्रान्तिकारी सिद्धान्त पर अमल करना और सुधारवाद का निषेध करते हुए क्रान्तिकारी तरीके से सुधार कार्यों को करना और इसी प्रक्रिया में पूँजीवादी व्यवस्था को रोज़गार, शिक्षा, भोजन, चिकित्सा और आवास के लिए कठघरे में खड़ा करना।

xviii) जनता के रोज़मर्रा के जीवन के जायज़ अधिकारों के लिए संघर्ष में हिस्सेदारी करना।

xix) देश भर में पूँजीवादी शोषण, लूट, दमन और उत्पीड़न के विरुद्ध होने वाले संघर्षों का समर्थन करना, चाहे वह मज़दूरों का अपने जायज़ हकों के लिए संघर्ष हो, विस्थापन और प्राकृतिक संसाधनों की कारपोरेट लूट के विरुद्ध आदिवासियों का संघर्ष हो, जातिगत उत्पीड़न के विरुद्ध मेहनतकशों और दलितों का संघर्ष हो या बर्बर अपराधों के विरुद्ध और आज़ादी के लिए स्त्रियों का संघर्ष हो।

xx) दुनिया भर में पूँजीवाद-साम्राज्यवाद के विरुद्ध चल रहे संघर्षों के साथ एकजुटता स्थापित करना और उनका समर्थन करना, चाहे वह अमेरिका में नस्लवाद के खिलाफ़ हो, फिलिस्तीनी जनता का नस्लवादी ज़ायनवादी साम्राज्यवाद के खिलाफ़ संघर्ष हो, या दुनिया भर में शोषित मज़दूरों, दमित स्त्रियों, व दमित राष्ट्रों व राष्ट्रीयताओं का संघर्ष हो।

अनुच्छेद-4

सदस्यता-सम्बन्धी नियम

धारा 1: सदस्यता की शर्तें

i) 15 वर्ष से 45 वर्ष का कोई भी भारतीय नागरिक जो औपचारिक या अनौपचारिक शिक्षा में किसी भी रूप में छात्र अथवा विद्यार्थी हो या शोधार्थी हो, यदि वह 'दिशा छात्र संगठन' के घोषणापत्र, कार्यक्रम व संविधान को स्वीकार करता हो,

संगठन का वार्षिक सदस्यता शुल्क देता हो और संगठन के लक्ष्यों व उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उसके कार्यक्रम के अनुसार कार्य करता हो।

ii) संगठन का वार्षिक शुल्क रुपये 10 होगा।

iii) सदस्यता सामान्यतः एक कैलेण्डर वर्ष के लिए होगी।

iv) संगठन के घोषणापत्र व कार्यक्रम से सहमति रखने वाले छात्र संगठन या मंच 'दिशा छात्र संगठन' के संघीय सदस्य बन सकते हैं।

धारा 2: सदस्यों के अधिकार

i) प्रत्येक सदस्य को बिना किसी दबाव या शर्त के सांगठनिक निकायों के चुनावों में किसी भी पद के लिए चुनने व चुने जाने की स्वतंत्रता होगी।

ii) प्रत्येक सदस्य को अपने पद या संगठन की सदस्यता से इस्तीफा देना का अधिकार होगा।

iii) प्रत्येक सदस्य को स्थानीय निकाय के नेतृत्व के समक्ष, मध्यवर्ती नेतृत्वकारी निकायों के समक्ष या सीधे सर्वोच्च केन्द्रीय नेतृत्व के समक्ष अपनी बात रखने का पूरा अधिकार होगा।

धारा 3: सदस्यों के कर्तव्य और दायित्व

i) संगठन के घोषणापत्र व कार्यक्रम में निर्धारित लक्ष्यों व उद्देश्यों के लिए संगठन के संविधान के अनुसार कार्य करना, इनका प्रचार-प्रसार करना और इसके कार्यक्रम को अमल में लाना तथा संगठन के कार्यक्रमों, अभियानों व आन्दोलनों में हिस्सा लेना सभी सदस्यों का कर्तव्य होगा।

ii) राष्ट्रीय सम्मेलन या उससे नीचे के स्तर के सम्मेलन व उच्चतर कमेटियों के निर्णयों को लागू करना सभी सदस्यों का कर्तव्य होगा।

iii) अपनी इकाई अथवा कमेटी में बहुमत द्वारा पारित निर्णय को लागू करना सभी सदस्यों का कर्तव्य होगा।

iv) हर सदस्य का यह कर्तव्य होगा कि वह संगठन के सभी प्रकाशनों को पढ़े और उनका प्रचार-प्रसार करे।

v) कोई भी सदस्य ऐसी जीवनशैली नहीं अपनाएगा और न ही ऐसे मंचों, समारोहों व संगठनों में किसी भी रूप में शिरकत करेगा, जो कि संगठन के लक्ष्यों व उद्देश्यों तथा कार्यक्रम के विपरीत जाता हो।

अनुच्छेद-5

सांगठनिक ढाँचा और नियम

धारा 1: सांगठनिक ढाँचा

i) राष्ट्रीय सम्मेलन:

(क) संगठन के घोषणापत्र, कार्यक्रम और संविधान को सूत्रबद्ध करने या उसमें संशोधन करने का अधिकार केवल राष्ट्रीय सम्मेलन का होगा और यह संगठन का सर्वोच्च निर्णायकारी निकाय होगा।

(ख) राष्ट्रीय सम्मेलन हर तीन वर्ष पर किया जायेगा और इसमें शामिल होने वाले सभी प्रतिनिधि अपनी स्थानीय इकाइयों, कमेटियों अथवा सम्बन्धित सांगठनिक निकायों में चुने जायेंगे। राज्य स्तरीय सम्मेलनों के लिए भी यही प्रक्रिया अपनाई जाएगी।

(ग) राष्ट्रीय सम्मेलन अतीत की गतिविधियों व कार्रवाइयों की समीक्षा करेगा और भावी नीतियों व कार्रवाइयों को निर्धारित करेगा।

(घ) राष्ट्रीय सम्मेलन राष्ट्रीय परिषद् का चुनाव करेगा, जिसके सदस्यों की संख्या विषम होगी और सम्मेलन द्वारा तय की जाएगी।

(ङ.) राष्ट्रीय सम्मेलन के समय, स्थान व कार्यसूची का निर्धारण राष्ट्रीय परिषद् द्वारा किया जायेगा, जिसकी सूचना कम-से-कम 45 दिन पहले जारी कर दी जाएगी।

ii) राष्ट्रीय परिषद्

(क) दो सम्मेलनों के बीच राष्ट्रीय परिषद् सर्वोच्च निर्णायकारी निकाय होगा और इसके सदस्यों की संख्या राष्ट्रीय सम्मेलन निर्धारित करेगा।

(ख) राष्ट्रीय परिषद् अपने द्वारा पारित निर्णय के राष्ट्रीय कार्यकारिणी द्वारा कार्यान्वयन की समीक्षा करेगा और उसे उचित निर्देश देगा।

(ग) राष्ट्रीय परिषद् संगठन की दो-तिहाई सदस्यों की मांग पर कभी भी विशेष सम्मेलन बुला सकती है।

(घ) राष्ट्रीय परिषद् की बैठकें हर छह माह पर होंगी।

(ङ.) अपने चुने जाने के बाद, राष्ट्रीय परिषद् 48 घण्टे के भीतर राष्ट्रीय कार्यकारिणी का चुनाव करेगी।

(च) राष्ट्रीय परिषद् की बैठक में कम-से-कम 60 प्रतिशत सदस्यों की मौजूदगी पर कोरम पूरा माना जायेगा।

(छ) राष्ट्रीय परिषद् अपने किसी सदस्य के इस्तीफे या मृत्यु की स्थिति में उसके स्थान पर एक नये सदस्य का सहयोजित कर सकती है।

iii) राष्ट्रीय कार्यकारिणी

क) दो सम्मेलनों के बीच राष्ट्रीय कार्यकारिणी संगठन का सर्वोच्च कार्यकारी निकाय होगी और राष्ट्रीय परिषद् के निर्णयों का कार्यान्वयन करेगी।

ख) राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्यों की संख्या विषम होगी व राष्ट्रीय परिषद् द्वारा तय की जायेगी।

ग) राष्ट्रीय कार्यकारिणी हर तीन माह पर अपनी बैठक करेगी और बैठक में साठ प्रतिशत सदस्यों की मौजूदगी अनिवार्य होगी।

घ) राष्ट्रीय कार्यकारिणी आपात बैठक की आवश्यकता पड़ने पर 2 दिन के नोटिस पर बैठक बुला सकती है।

ड.) अपने चुने जाने के बाद राष्ट्रीय कार्यकारिणी निम्न पदाधिकारियों का चुनाव 24 घण्टे के अन्दर करेगी:

अध्यक्ष

उपाध्यक्ष

महासचिव

कोषाध्यक्ष

च) अपने किसी सदस्य के इस्तीफे या मृत्यु की स्थिति में राष्ट्रीय कार्यकारिणी उसके स्थान पर नये सदस्य का सहयोजित कर सकती है।

iv) राष्ट्रीय कार्यकारिणी व राष्ट्रीय परिषद् के मातहत राज्यों अथवा अन्य निश्चित क्षेत्रीय इकाइयों के आधार पर संगठित इकाइयाँ व कमेटियाँ होंगी।

v) तृणमूल धरातल पर विश्वविद्यालय/कॉलेज/स्कूल या अन्य शैक्षणिक संस्थानों अथवा गाँव/शहर के आधार पर निर्मित बुनियादी इकाइयाँ होंगी।

vi) पदाधिकारियों के अधिकार व कर्तव्य

क) अध्यक्ष राष्ट्रीय परिषद् व राष्ट्रीय कार्यकारिणी की सभी बैठकों की अध्यक्षता करेगा। उसकी अनुपस्थिति में यह कार्यभार उपाध्यक्ष द्वारा पूरा किया जायेगा और उसके भी अनुपस्थिति की सूरत में राष्ट्रीय परिषद् व राष्ट्रीय कार्यकारिणी अपनी बैठकों के अध्यक्ष का चुनाव करेंगी।

ख) महासचिव संगठन के मुख्यालय के कार्यों के लिए उत्तरदायी होगा, उसकी सम्पत्ति व अभिलेखागार का अभिरक्षक (कस्टोडियन) होगा। राष्ट्रीय परिषद् व राष्ट्रीय

कार्यकारिणी की कार्यसूची व रपटों को तैयार करेगा तथा बैठकों में उसे प्रस्तुत करेगा। राष्ट्रीय सम्मेलन में राष्ट्रीय परिषद् द्वारा पारित रपटों को भी महासचिव पेश करेगा।

ग) सभी मंचों पर अध्यक्ष और महासचिव संगठन का प्रतिनिधित्व करेंगे।

घ) कोषाध्यक्ष महासचिव की सहायता से संगठन की वित्तीय समीक्षा करेगा और वित्तीय रपट तैयार करेगा तथा उसे राष्ट्रीय सम्मेलन में पेश भी करेगा। कोषाध्यक्ष सभी इकाइयों/कमेटियों के वित्त का निरीक्षण व समीक्षा भी करेगा।

vii) नीचे की कमेटियों व उनके सम्मेलन के सम्बन्ध में

क) राज्यों के आधार पर राज्य स्तर के सम्मेलन होंगे, जिसमें प्रतिनिधित्व के राष्ट्रीय परिषद् द्वारा तय अनुपात से प्रतिनिधियों का सभी जिलों से चुनाव होगा। राज्य स्तरीय सम्मेलन पहले राष्ट्रीय सम्मेलन के बाद ही हो सकते हैं। राज्य कमेटियाँ राष्ट्रीय परिषद् व राष्ट्रीय कार्यकारिणी के प्रति उत्तरदायी होंगी।

ख) राज्य कमेटी के मातहत जिला कमेटियाँ होंगी जिनके सम्मेलन राज्य कमेटी के पहले सम्मेलन के बाद ही हो सकते हैं। इन सम्मेलनों में भी प्रतिनिधियों का चुनाव राष्ट्रीय परिषद् द्वारा तय अनुपात से ही होगा। जिला कमेटियाँ राज्य कमेटियों के प्रति उत्तरदायी होंगी।

ग) जहाँ कहीं भी पाँच सदस्य हों, वे अपने आपको स्थानीय/कॉलेज इकाई के रूप में गठित कर सकते हैं। इस इकाई का एक चुनाव प्रभारी होगा। यह इकाई अपने से ठीक ऊपर की कमेटी के प्रति उत्तरदायी होगी। ये बुनियादी इकाइयाँ जिला कमेटी अथवा राज्य कमेटी के प्रति उत्तरदायी होंगी।

धारा-2: सम्बद्ध संगठनों की सदस्यता सम्बन्धी नियम

क) दिशा छात्र संगठन के घोषणापत्र, कार्यक्रम और संविधान से सहमति रखने वाले छात्र मंचों व संगठनों को दिशा छात्र संगठन का संघीय सदस्य बनाया जा सकता है।

ख) सम्बद्ध संगठन का अपना घोषणापत्र, कार्यक्रम और संविधान हो सकता है जोकि दिशा छात्र संगठन के घोषणापत्र, कार्यक्रम और संविधान के किसी भी पहलू का निषेध न करता हो।

ग) सम्बद्ध संगठन के सम्मेलनों में दिशा छात्र संगठन के राष्ट्रीय प्रतिनिधि मण्डल की उपस्थिति अनिवार्य होगी, जो कि उसकी चर्चाओं में हिस्सा लेने का अधिकारी होगा लेकिन वोट देने का अधिकार देना सम्बद्ध संगठन के निर्णय पर निर्भर होगा।

घ) दिशा छात्र संगठन के राष्ट्रीय सम्मेलन में निश्चित अनुपात/संख्या में सम्बद्ध

छात्र संगठन के प्रतिनिधि मण्डल की उपस्थिति अनिवार्य होगी और उसे चर्चाओं में हिस्सा लेने का अधिकार होगा, लेकिन मतदान का अधिकार नहीं होगा।

ड.) सम्बद्ध संगठनों को अपने कार्य की नियमित रपटें दिशा छात्र संगठन के राष्ट्रीय परिषद् को भेजनी होंगी।

अनुच्छेद-6

अनुशासनात्मक कार्रवाई सम्बन्धी प्रावधान

(i) दिशा छात्र संगठन का कोई सदस्य या कोई इकाई यदि संगठन के लक्ष्य एवं उद्देश्यों के प्रतिकूल आचरण करे, इसके कार्यक्रम पर अमल न करे या उसके प्रतिकूल आचरण करे, संगठन के संविधान या नेतृत्व के आदेशों-निर्देशों का उल्लंघन करे और अपने व्यवहार से संगठन की साख को क्षति पहुँचाये तो संगठन को उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई का अधिकार होगा, जिसके अन्तर्गत चेतावनी, निलम्बन, निष्कासन, अथवा इकाइयों के सन्दर्भ में, मान्यता रद्द करना शामिल होंगे।

(ii) संविधान और कार्यक्रम के विरुद्ध आचरण करने वाले सदस्य के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई का अधिकार सम्बन्धित कमेटी या राष्ट्रीय कार्यकारिणी द्वारा अधिकृत सम्बन्धित कमेटी को होगा। सम्बन्धित कमेटी को अपने हर ऐसे निर्णय की स्वीकृति के लिए अपने ठीक ऊपर की कमेटी को भेजना होगा।

(iii) जिस इकाई के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई की गयी हो, उसे सम्बन्धित कमेटी के समक्ष अपना स्पष्टीकरण देने तथा ऊपर की कमेटी और फिर केन्द्रीय कार्यकारिणी तक अपील करने का अधिकार होगा।

(iv) जिस सदस्य के विरुद्ध निलम्बन या निष्कासन की कार्रवाई की गयी हो, उसे सम्बन्धित कमेटी के सामने, फिर उच्चतर कमेटी के सामने और फिर राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सामने सीधे अपील करने का अधिकार होगा।

(v) संगठन के लक्ष्य एवं हितों के विरुद्ध काम करने की स्थिति में राष्ट्रीय कार्यकारिणी को नीचे की किसी कमेटी, किसी स्थानीय कमेटी या किसी बुनियादी इकाई की मान्यता रद्द कर देने का अधिकार होगा। स्थानीय कमेटी के ऊपर की कमेटी की मान्यता रद्द करने की स्थिति में राष्ट्रीय कार्यकारिणी के लिए केन्द्रीय परिषद् से अपने निर्णय का अनुमोदन प्राप्त करना अनिवार्य होगा। राष्ट्रीय कार्यकारिणी किसी कमेटी की मान्यता रद्द किये जाने की स्थिति में, उसके ठीक ऊपर की कमेटी या उसके भी ऊपर की कमेटी की सलाह लेकर उक्त कमेटी का पुनर्गठन कर सकती है।

अनुच्छेद-7

संविधान संशोधन सम्बन्धी नियम

- (i) संविधान में संशोधन का अधिकार केवल और केवल राष्ट्रीय सम्मेलन को होगा। इस संशोधन के लिए दो-तिहाई बहुमत अनिवार्य होगा।
- (ii) संविधान में कोई भी संशोधन प्रस्तावित करने का अधिकार किसी भी सदस्य, इकाई अथवा कमेटी और राष्ट्रीय कार्यकारिणी व राष्ट्रीय परिषद् को होगा।
- (iii) कोई संशोधन प्रस्तावित होने पर राष्ट्रीय सम्मेलन के तीन माह पूर्व सभी इकाइयों को लिखित तौर पर तीन माह पूर्व भेजना अनिवार्य होगा।

अनुच्छेद-8

नियम व उपनियम बनाने के अधिकार

- (i) संगठन के संविधान के बुनियादी ढाँचे को परिवर्तित किये बिना कोई नियम या उपनियम बनाने का अधिकार राष्ट्रीय कार्यकारिणी को होगा, बशर्ते कि वह संगठन के लक्ष्य व उद्देश्यों में कोई बदलाव न करता हो।
- (ii) राष्ट्रीय परिषद् इन नवनिर्मित नियमों व उपनियमों को रद्द या अनुमोदित करने का अधिकार रखती है।
- (iii) राष्ट्रीय सम्मेलन इन नवनिर्मित नियमों व उपनियमों को रद्द या अनुमोदित करने का अधिकार रखता है।



जहाँ स्पन्दित हो रहा है बसन्त
हिंस्र हेमन्त और सुनसान शिशिर में
वहाँ है तुम्हारी जगह
अगर तुम युवा हो!
जहाँ बज रही है भविष्य-सिम्फ़नी
जहाँ स्वप्न-खोजी यात्राएँ कर रहे हैं
जहाँ ढाली जा रही हैं आगत की साहसिक परियोजनाएँ,
स्मृतियाँ जहाँ ईंधन हैं,
तुहार की भाथी की कलेजे में भरी
बेचैन गर्म हवा जहाँ ज़िन्दगी को रफ़्तार दे रही है,
वहाँ तुम्हें होना है
अगर तुम युवा हो!
जहाँ दर-बदर हो रही है ज़िन्दगी,
जहाँ हत्या हो रही है जीवित शब्दों की
और आवाजों को कैद-तनहाई की
सज़ा सुनायी जा रही है,
जहाँ निर्वासित वनस्पतियाँ हैं
और काली तपती चट्टानें हैं,
वहाँ तुम्हारी प्रतीक्षा है
अगर तुम युवा हो!
जहाँ संकल्पों के बैरिकेड खड़े हो रहे हैं
जहाँ समझ की बंकरें खुद रही हैं
जहाँ चुनौतियों के परचम लहराये जा रहे हैं
वहाँ तुम्हारी तैनाती है
अगर तुम युवा हो।

- शशि प्रकाश

28 सितम्बर 2020 को जारी
दिशा छात्र संगठन के लिए वारणी द्वारा प्रकाशित और लक्ष्मी ऑफ़सेट
से मुद्रित।